वर्ष ३ अंक ३५

राष्ट्र भाषा संकल्प विशेषांक

सितम्बर २०२१

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित

महापुरुष जिनका सितंबर माह में जन्म हुआ

४ सितंबर दादा भाई नौरोजी जयंती

५ सितंबर सर्वपल्ली राधाकृष्णन जयंती

११ सितंबर विनोबा भावे जयंती

२६ सितंबर ईश्वरचंद्र विद्यासागर जयंती

२७ सितंबर भगतसिंह जयंती

१४ सितम्बर हिंदी संकल्प दिवस

४ सितम्बर पं गंगाप्रसाद उपाध्याय जयंती

आर्य लेखक परिषद्

ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

सितम्बर २०२१

वर्ष–३ अंक–३५,
विक्रम संवत् २०७८
दयानान्दाब्द– १९७
कलि संवत् – ५१२३
सृष्टि संवत् –१,९६,०८,५३,१२२

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

❖

सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(८७३९९७९६३०,
९९९३९७०९४०)

❖

आकल्पन
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
महर्षि दयानन्द आश्रम
ग्राम सिताबाडी, केलवाड़ा
जिला–बारां (राजस्थान)–३२५२१६

अनुक्रम

विषय

१. दिशा बोध (सम्पादकीय)
२. मैं ॐ हूँ (कविता)
३. अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां
४. Varna Ashramas Make Us Ideal
५. वेद क्रान्ति
६. जीवनीशक्ति व शरीर के नवनिर्माण...
७. सच्चे शिक्षक (कविता)
८. अंग्रेजी की उपयोगिता और अनिवार्यता : एक विमर्श
९. हिन्दी बहूरानी है : एक ऐतिहासिक चिन्तन
१०. हैदराबाद सत्याग्रह...
११. हिन्दी जननी हिंद की (कविता)
१२. प्रगति राष्ट्रभाषा
१३. हिन्दी हैं हम

ईमेल – aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट – https://aryalekhakparishad.com/
फेसबुक – आर्य लेखक परिषद्

Digital

सम्पादकीय

दिशा बोध

आर्य समाज की स्थापना से पूर्व अपने कार्य का प्रारम्भ महर्षि दयानन्द ने पाखण्ड का खण्डन करके किया था और हरिद्वार कुम्भ के मेले में जो पताका उनके हाथ में थी उसका नाम पाखण्ड खण्डनी पताका था। उसके पश्चात् उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना था। उपकार से तात्पर्य क्या है? इसका उत्तर है शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। इससे स्पष्ट है कि पाखण्ड एक ऐसी वस्तु है जो संसार की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति में बाधा डालता है और मनुष्य को संसार के अपकार में प्रवृत्त करता है। वस्तुतः पाखण्ड एक महारोग है, जो मानव मस्तिष्क में उत्पन्न होता है और संसार को पाशबद्ध करके दुख गर्त में युगों के लिए पटक देता है। इसलिए संसार की उन्नति चाहने वाले मनुष्य को चाहिए कि वह पाखण्ड को पहचान कर उसका संहार करें और फिर समाज निर्माण करके उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचाए। कहते हैं कि पाखण्ड रोग के कीटाणु टी.बी और इन्फ्लूएञ्जा के कीटाणुओं से भी सूक्ष्म होते हैं। और किसी समाज में प्रविष्ट होने पर उसकी एक–एक इकाई को नष्ट कर देते हैं। अतः किसी प्रकार इन्हें अनदेखा नहीं करना चाहिए पाखण्डी का लक्षण करते हुए मानव धर्म शास्त्र में कहा गया है, कि जो विकर्मस्थ, विल्ले और बगुले की प्रवृत्ति वाले, शठ, कुतर्की, मिथ्या विनीत छद्मिक, लोक दम्भक, धर्म ध्वजी और सदा लोभी कृतघ्न वे पाखण्डी है।

ऊपर के शब्द थोड़े कठिन है अतः आज की भाषा में लक्षण करते हुए एक शिक्षा शास्त्री के शब्दों में लिखते हैं जिससे पाठकों को सरलता से समझ में आ जाये। वे कहते हैं कि पाखण्ड की संरचना का सूत्र क्या है? अहंकार, नकचढ़ापन, आध्यात्मिक मूर्खता की ढुलमुल पृष्ठभूमि और बनावटी नम्रता का फटीचर सौन्दर्य बोध। पाखण्डी की एक जेब में रुपया होता है, दूसरी में प्रार्थना की पुस्तक। पाखण्डी भगवान् और शैतान दोनों की पूजा करता है और दोनों को बेवकूफ बनाता है। दुर्भाग्य की बात है कि पाखण्ड रोग के परम चिकित्सक आर्य समाज की शिशु काया में ही पाखण्ड रोग के कीटाणु प्रविष्ट हो गए और वह युवा होने से पूर्व ही विघटित, निस्तेज और निष्क्रिय हो गया। इसका कारण हमारी अपनी असावधानता ही है। आज हम पाखण्डियों के जाल में बुरी तरह फंस गए हैं। इसलिए आवश्यकता है, नये सिरे से कार्य करने की। पहले पाखण्डियों को पहचान कर उन्हें नष्ट करें और फिर आर्य समाज बनाएं तब संसार का उपकार होगा।

जो आर्य समाज बनाकर संसार का उपकार करना चाहते हैं अथवा महर्षि दयानन्द के ऋण को चुकाने की भावना और उनके स्वप्नों को साकार करने की तड़प रखते हैं और अपना दुर्लभ मानव जीवन सफल करना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि महर्षि दयानन्द पर पूरा विश्वास अथवा भरोसा करके उसके ही पीछे चलें, उसने रोग का सही निदान किया है और उपचार भी बताया है। हमारी असफलता का कारण हमारी द्विविधा है। आइये देखें उस महर्षि ने पाखण्ड रोग के उपचार और आर्य समाज निर्माण हेतु क्या उपाय बताए हैं? वह क्या करना चाहता था और हम क्या कर रहे हैं इत्यादि।

यह बात सदा ध्यान में रखने की है कि मनुष्य ही संसार में अस्वाभाविकता उत्पन्न करता है। अतः यदि मनुष्य ठीक रहे तो कोई गड़बड़ नहीं हो सकती। परन्तु मनुष्य ठीक क्यों नहीं रहता यह बात अध्यात्मिक अथवा मनोवैज्ञानिक क्षेत्र की है। भारतीय विचारकों ने इसका विश्लेषण किया है। उन्होंने बताया है कि जीव जब प्रकृति के साथ संयुक्त होता है तो समष्टि बुद्धि तत्व से अहंकार की उत्पत्ति होती है इसके उत्पन्न होते ही हर मनुष्य 'मैं हूँ', 'मैं हूँ' की अनुभूति करने लगता है। 'मैं' के अन्दर प्राप्ति की स्वाभाविक अभिलाषा है। जो पैदा होते ही अपने सम्बन्धी 'मेरा' को ढूंढने लगती है और सांसारिक भोग पदार्थ को सभी 'मेरा है,' 'मेरा है' कहने लगते हैं। अब इस संसार को सब मेरा है, मेरा है ही कहें और कोई किसी को कुछ न दें, तो यह बड़ी भीषण स्थिति होगी। अतः आवश्कता इस बात की है कि 'मैं' को संवारा जाय जिससे 'इसका मेरा' भी सुधरे और इसका

दायरा इतना विशाल हो जाय की यह संसार के प्राणी मात्र को अपना मान कर उनके लिए अधिक से अधिक त्याग करना सीख जाये और 'मेरा है,' मेरा है' के स्थान पर 'मेरा नहीं है', 'मेरा नहीं है' कहने लगे। स्वाभाविक अहं विकृत होता है, वह कहता है सब मेरा है सब मेरा है। सब मेरे उपभोग के लिए है, मेरी सेवा, मेरी पूजा के लिए है, मात्र मैं ही सर्वस्व के भोगने का अधिकारी हूँ। इत्यादि।

दूसरी ओर संस्कृत अहं कहता है कि सब 'मेरा है,' 'सब मेरा है।' इसलिए मेरा सब इनका है क्योंकि ये सब मेरे अपने हैं और यह अपनत्व त्याग की भावना को इतना विस्तृत कर देता है कि मनुष्य सारे संसार को अपना कुटुम्ब मान कर उसके उपकार में प्रवृत्त होकर अपना सर्वस्व औरों को दान कर देता है। ऐसे संस्कृत अहं मनुष्य को ही सच्चा मनुष्य कहते हैं। वेद में इसे 'आर्य' कहा गया है।

ऐसे मनुष्य ही संसार में सुख शान्ति का साम्राज्य स्थापित कर सकते हैं किन्तु इसके लिए आवश्यक है कि ये प्रचुर मात्रा में हों और सशक्त तथा सङ्गठित हों। अन्यथा विकृत अहं के लोगों द्वारा पिट कर पराजित व विनिष्ट हो जायेंगे अथवा पराधीनता का जीवन जीने को विवश होंगे। सच्चे मनुष्य या आर्य में एक और विशेषता होनी चाहिए। वह यह कि विकृत अहं के लोगों से अपने और अपने सङ्गठन की रक्षा तो करे ही साथ ही इस बात का पूर्ण प्रयास करें कि विकृत अहं के लोगों को भी अधिक से अधिक आर्य बनाता रहे। कैसे ? वाणी से अपने विचारों का प्रचार करके, अपनी महत्ता को हृदयंगम करावे, धन के द्वारा निर्धनों, दीन जनों की दीनता दूर कर उनकी सहानुभूति प्राप्त करें। सेवा और प्रेम द्वारा लोगों को अपना बनावे, किन्तु एक वर्ग ऐसा होगा जो इन उपायों से आर्य नहीं बनेगा। वह अत्यन्त विकृत लोग होंगे अतः दण्ड देकर अनुशासन में रखें और जो सड़ा हुआ अंश बनकर नासूर बन गया हो उसे काट कर समाप्त ही कर देवे। इसके लिए भले ही छलकपट का आश्रय लेना पड़े। इस प्रकार एक आर्य को आक्रमणकारी होना अनिवार्य है। वेद में इस प्रकार की सैन्य व्यवस्था का नाम ही वर्ण व्यवस्था है। संसार के अहं को संस्कृत बनाने के लिए, दूसरे शब्दों में अन्याय, अत्याचार, शोषण और अधर्म को समाप्त करके सुख शान्ति का साम्राज्य स्थापित करने के लिए युद्ध अवश्यमभावी है। ऐसे युद्ध को ही धर्म युद्ध कहा गया है। इससे कतराकर या डरकर जो लंगड़ी अहिंसा का प्रचार करते हैं वे सच्चे मनुष्य कहलाने के अधिकारी नहीं। ऐसे लोगों का मार्ग अनुसरण करने से कभी संसार का हित नहीं हो सकेगा। यह तो हुआ बाहर के और आस पास के लोगों के लिए करणीय कर्म। अब कुछ घर में भी करना आवश्यक है। आर्यों के घरों में जो संतति उत्पन्न हो वह भी संस्कृत अहं की हो अर्थात् अपनी विचारधारा की ही हो अन्यथा सङ्गठन दीर्घ जीवी न होगा वरन् आर्य वंश वृक्ष ही नष्ट हो जायेगा। अतः प्रत्येक आर्य का कर्त्तव्य है कि वह अपनी संतति को संस्कारित को संस्कारित करके अपनी विचारधारा का बनावें। इसी बात को गुरुकुल से निकलने वाले स्नातक को आचार्य अन्तिम उपदेश के रूप में कहता था कि ***"प्रजा तन्तु म् मा व्यवच्छेत्सीः"*** अर्थात् बेटा प्रजा तन्तु को मत तोडना, इसीलिए पितृ ऋण से उऋण होने के लिए पुत्र पैदा करना अनिवार्य था और निपुत्री को लोग बुरा मानते थे।

यह सब होने के लिए यह अनिवार्यतः आवश्यक है कि आर्यों या संस्कृत अहं के लोगों का आहार विहार, व्यवहार तथा वैवाहिक सम्बन्धादि आर्यों में ही हो ऐसी व्यवस्था हो जिससे आर्यों की संख्या बढ़ती रहे, इसके लिए पूर्ण सावधान रहकर प्रयत्नशील रहना चाहिए कि आर्य सङ्गठन से निकल कर कोई अनार्यों में न जाने पावे अपितु अनार्यों में से आर्य बनकर और अपनी संतति को संस्कारित करके अपनी संख्या वृद्धि और सुदृढ़ सङ्गठन करना चाहिए किन्तु एक बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि संस्कार देने पर भी जो आर्य न बने अपने अथवा ऊपर से आर्य वेश में हो किन्तु अनार्य आचार का सेवन गुप्त रूप से करता हो ऐसे जन को तत्काल सङ्गठन से बहिष्कृत कर देना चाहिए और आवश्यक हो तो नष्ट ही कर देना चाहिए भले ही वह अपना पुत्र, माता, पिता, पत्नी या अन्य कोई सम्बन्धी ही क्यों न हो यहाँ किसी प्रकार के मोह में फँस कर अनिष्ट नहीं करना चाहिए। इस प्रकार आर्य करण का युद्ध अपने घर से भी प्रारम्भ करना पड़ सकता है। यह युद्ध विचारों का है। संसार में विचारों के रिश्ते ही वास्तविक और कल्याणकारी होते

हैं, खून के या जाति के नहीं।

रक्त अथवा जाति का सम्बन्ध तभी सुदृढ़ और हितकारी होता है जब उसके साथ हमारे परस्पर विचार मिलते हों, विचार न मिलने पर पिता–पुत्र, पति–पत्नी, माँ–बेटे, भाई–भाई सभी परस्पर शत्रु बन जाते हैं। संसार का इतिहास मेरी बात की पुष्टि कर रहा है। हिरण्यकश्यप–प्रहलाद, कंस–कृष्ण और उग्रसेन, कौरव–पाण्डव, रावण–विभीषण, औरंगजेबादि इसके साक्षी हैं।

अब समाज क्या है, जरा इस पर विचार करें। कहते हैं मनुष्य सामाजिक प्राणी हैं। क्या अर्थ है इसका? मनुष्य की शक्ति अल्प है, उसका सामर्थ्य सीमित है। ज्ञान की दृष्टि से भी वह अल्पज्ञ है। अतः जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत प्रत्येक मनुष्य को दूसरे मनुष्य की सहायता की आवश्यकता होती है। अकेला रह कर वह संसार का लाभ नहीं उठा सकता और अपना जीवन भी सफल नहीं कर सकता। इसके लिए उसे औरों के साथ मिलकर रहने की आवश्यकता है। दूसरे अपना सहयोग तभी देंगे जब वह भी दूसरों का सहयोग करे। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे के लिए कुछ देना या त्याग करना पड़ेगा। अब यदि इस त्याग का अभ्यास नहीं किया गया तो त्याग करने में कष्ट अनुभव होगा क्योंकि अपनी इच्छाओं का दमन करके औरों की इच्छाओं को पूरा करने का कार्य बड़ा कठिन है। अतः मन से संयम को स्वीकार कर त्याग का अभ्यास आवश्यक है। ऐसे ही संयमी और त्यागी लोगों के समूह से समाज का निर्माण होता है।

मनुष्य न स्वतन्त्र है न ही परतन्त्र, अपितु तो परस्पर तन्त्र है। अर्थात् मनुष्यों को यह आवश्यक है कि वे एक ऐसा तन्त्र बनावें जो सबके साझे का हो और सभी उसका पालन ईमानदारी से करें। इस प्रकार निर्धन से लेकर धनवान् तक, निर्बल से लेकर बलवान् तक और मूर्ख से लेकर विद्वान् तक सभी को आवश्यक उपभोग सामग्री तथा उन्नति के साधन बिना किसी भेदभाव या पक्षपात के समुचित रूप से मिल सकें। कोई किसी का शोषण न करे, कोई किसी पर अत्याचार न करे, ठगी और लूट न होने पावे इस प्रकार के तन्त्र के अन्तर्गत सङ्गठित होने वाले लोगों के समूह का नाम ही समाज है।

प्रत्येक समाज की आधारशिला उसकी फिलासाफी, दर्शन या विचारधारा है। संसार और जीवन के उद्देश्य के सम्बन्ध में जो समाज जैसा सोचता होगा व्यवहार में वह उसी प्रकार का आचरण करता होगा और अपनी संतति तथा संसार के लोगों को उसी विचार का बनाने के लिए प्रयत्नशील होगा। जिस समाज में त्याग की भावना संयम और नियम पालन की दृढ़ता जितनी बलवती और विस्तृत होगी वह समाज उतना ही सशक्त होगा। समाज अपने दर्शन के अनुसार एक ऐसी आचार संहिता प्रस्तुत करता है जिससे भिन्न ज्ञान, भिन्न प्रवृत्ति और भिन्न सामर्थ्य वाले लोग एक निश्चित उद्देश्य के लिए एकता के सूत्र में बंध जाते हैं। वे पारस्परिक उन्नति के लिए कृत संकल्प और कटिबद्ध हो जाते हैं।

परन्तु विकृत अहं के लोगों या अनार्यों का कभी कोई समाज नहीं बनता। क्योंकि वे असुर, दस्यु या स्वार्थी होते हैं। वे दूसरों को उनका भाग दिए बिना सब कुछ लेना चाहते हैं। इसके लिए वे छल और बल दोनों का प्रयोग करते हैं। उनके विचार मानव सुलभ दुर्बलताओं अर्थात् काम, क्रोध, लोभ और मोह से ग्रस्त होते हैं। उनका कोई निश्चित दर्शन नहीं होता। जो कुछ दर्शन के नाम पर होता है वह उनके स्वार्थ में बाधक जनहितकारी दर्शन पर की गई प्रतिक्रिया मात्र होता है। जिसके आधार पर कभी किसी समाज का निर्माण हो ही नहीं सकता। इस प्रकार समाज के अभाव में जनसमूह निरन्तर छोटे छोटे वर्गों में विभक्त होता चला जाता है और संसार में बलवान् निर्बलों के, धनवान् निर्धनों के और विद्वान् मूर्खों के श्रम का शोषण करने लग जाते हैं और उनके सभी साधनों को हथिया लेते हैं। मत्स्यराज और सिंहराज का बोलबाला हो जाता है।

महर्षि दयानन्द ने इस रहस्य को भली प्रकार समझा था। उनके समय में संसार की हालत बड़ी दयनीय थी, जनसमूह छोटे छोटे वर्गों में विभक्त था। वस्तुतः कहीं कोई समाज नहीं था। समाज या सङ्गठन के नाम पर कुछ निकृष्ट स्वार्थ प्रधान दल थे जो अत्यन्त संकीर्ण भावना वाले थे और अपने से निर्बलों और अज्ञानियों और असाहयों का सर्वस्व लूटना ही जिनका धर्म था। स्वयं महर्षि दयानन्द जिस देश में पैदा हुए थे, उस देश की बहुसंख्यक जनता जिसे हिन्दू कहा जाता था, उसका कोई समाज नहीं था। वह एक सड़े हुए दलदल

के भांति थी। जिसमें नाना सम्प्रदाय रूप बुलबुले उठ रहे थे और वह सदियों से पराधीनता के गर्त में पड़ी थी। अतः महर्षि ने पहले आर्य बनाने का कार्य प्रारम्भ किया पश्चात् आर्य समाज की आधारशिला रखी। आर्य समाज की आधारशिला थी वैदिक फिलासाफी यानी वैदिक दर्शन। इसी दर्शन के अनुसार उन्होंने एक आचार संहिता प्रदान की जिसमें एक भाषा, एक ईश्वर, एक धर्म, एक उपासना पद्धति, एक गुरु मन्त्र, एक अभिवादन, एक धर्म ग्रन्थ और एक लक्ष्य का निर्धारण वैज्ञानिक रीति से किया गया है। इसमें संसार और जीवन का उद्देश्य भी युक्तिसंगत एवं वैज्ञानिक है। वस्तुतः यह एक पूर्ण और यथार्थ दर्शन है जिसमें प्राणी मात्र का हित समाहित है और जो मानव अहं को संस्कारित कर उसे सीमित दायरे से बढ़ाते बढ़ाते सारे संसार का हितैषी बना देता है। इसके आधार पर एक ऐसा समाज बनाया जा सकता है जो सभी प्रकार की संक्रीणता से परे रहकर संसार को आर्य बनाकर एक सूत्र में बांध सकता है। यह बात ध्यान देने की है कि महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की आधारशिला ही रखी थी भवन निर्माण नहीं किया था।

दुर्भाग्य से वे असमय में ही अस्त हो गए और आगे का कार्य अवरुद्ध हो गया। अब उनके बताए सिद्धान्तों के अनुसार निर्माण कार्य करने की आवश्यकता थी जिसका उत्तरदायित्व हमारे सब के ऊपर था और हैं। परन्तु हमने क्या किया? हम कुछ दिनों तो सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे परन्तु कुछ दिन के पश्चात् अपनी दुर्बलता और सिद्धान्तों के साथ समझौता करने लगे। हमने कुछ दिन तो ईटें ईकट्ठी की फिर उन ईटों को पुराने खण्डहरों और दलदल में फेंकने लगे, हमने आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रचार ईटें इकट्ठी करके भवन निर्माण करने के स्थान पर इस प्रचार को अपनी जीविका का साधन व्यवसाय बना लिया। फलतः आर्य समाज की नींव तो भरी पड़ी है पर उसके ऊपर भवन बनाना अभी तक शेष है। हाँ कागजी आर्य समाज और पार्थिव भवन अवश्य इतने बना लिए हैं कि उनकी सफाई और सुरक्षा तक हम नहीं कर सकते। हमारे सिद्धान्त जितने उँचे व्यवहार और आचार उतना ही नीचा है। अतः आज हमारे अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न हो गया है। क्रमशः (शेष अगले अंक में)

– ✍ वेदप्रिय शास्त्री

मैं ॐ हूँ

मैं ॐ हूँ।

मैं सिर्फ एक शब्द नहीं हूँ ,
बल्कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के समय का सर्वप्रथम नाद हूँ।

मैं तीन अक्षर अ, ऊ और म से बना हुआ हूँ।
मैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश का प्रतीक हूँ।

मैं संसार के कण–कण में व्याप्त ध्वनि हूँ।
मैं सर्वत्र सकारात्मकता का संचार करता हूँ।

मैं समस्त वेदों की व्याख्या में समाहित हूँ।
मैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रदायक हूँ।

मैं वेदों की ऋचाओं को पूर्णता प्रदान करता हूँ।
मैं आधिभौतिक दुःखों की शांति का सूचक हूँ।

मैं सभी मंत्रों में सर्वप्रथम उच्चरित नाद हूँ।
मैं नित्यानन्द, मुक्तानन्द और ब्रह्मानन्द रूप हूँ।

मैं समस्त ब्रह्माण्ड की उर्जा का स्रोत हूँ।
मैं तिमिर से प्रकाश की ओर ले जाता हूँ।

मैं ग्रंथियों के स्त्राव को नियंत्रित करता हूँ।
मैं आधि,व्याधि और उपाधि को दूर करता हूँ।

मैं सर्वत्र आभामण्डल की रचना करता हूँ।
मैं आल्हादकारी रसायन की वर्षा करता हूँ।

मैं अनादि, अनन्त तथा निर्वाण का प्रतीक हूँ।
मैं परमात्मा से जुड़ने का साधारण तरीका हूँ।

मैं सभी धर्मों में पवित्र ध्वनि के रूप में प्रकट होता हूँ।
मैं किसी एक की सम्पत्ति नहीं हूँ।
मैं सबका हूँ।
मैं सार्वभौमिक हूँ।
मैं पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हूँ।

–✍ समीर उपाध्याय
चोटीला (गुजरात)
9265717398

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां
'स्व' का अर्थ अर्थात् हिन्दी राष्ट्र की आत्मा और आधार बने

– ✍ अखिलेश आर्येन्दु

वेद में स्व–भाषा का महत्त्व बताते हुए कहा गया है – ***अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्*** यानी मैं राष्ट्रशक्ति और वह चेतना हूं जो वसुओं (समृद्धी के देवताओं) को शक्ति और प्रेरणा प्रदान करती हूं, जिससे वे समर्थ होकर देश को धन–धान्य और वैभव से सम्पन्न करते हैं। कहने का मतलब यह है कि जिससे राष्ट्र को शक्ति मिले उसे सम्मान देना चाहिए। गौरतलब है हिन्दी से राष्ट्र को शक्ति मिलती है, इसलिए हिन्दी को सम्मान और शक्ति देते रहना चाहिए। लेकिन हिन्दी राष्ट्र की शक्ति न होकर अंग्रेजी राष्ट्र की शक्ति बनती जा रही है इसलिए हिन्दी को हर स्तर पर आगे बढ़ाने की आवश्यकता है। डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है – ''हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ले, इसकी बजाय यह वातावरण बनाना चाहिए कि सभी भारतीय भाषाएँ अंग्रेजी का स्थान लें।'' हिन्दी की व्यापकता का दायरा उसके संग्रहणीयता और उदारता के कारण है। यही कारण है कि देश के प्रत्येक अंचल में हिन्दी उस आंचलिक भाषाई मिठास के रूप में उपस्थित है। लेकिन यह मिठास तब खटास में बदल जाती है जब इसमें अंग्रेजी की घृणात्मकता का तथाकथित विकास, भूमण्डलीकरण और उदारीकरण के नाम पर मिलाई जा रही कृत्रिमता उसकी मौलिकता और नवीनता को खत्म करने का कार्य करने लगती है। स्पष्ट है, हिन्दी में उदारता के नाम पर उसकी मौलिकता, नवीनता और सृजनात्मकता को धूसरित किया जा रहा है। हिंदी भारतीय भाषाओं की मिठास, नवीनता और सृजनात्मकता की पावनी पवित्रता से वंचित होती जा रही है। इसे इस रूप में भी हम समझ सकते हैं कि हिन्दी अंग्रेजी की अवैज्ञानिकता, दबंगई और विचित्रात्मकता के कारण 'हिंग्लिष' के रूप में अपना स्वभाव खोती जा रही है और 'निर्मित' होने की जगह खण्डहर में बदलती जा रही है। आवश्यकता है भारतीय भाषाओं के शब्दों, शैलियों और सांस्कृतिक चेतना से लबरेज होकर हिंदी अधिक सहज और संग्रहणीय बने, लेकिन हो रहा है इसका ठीक उल्टा। इससे हिंदी का अन्य भारतीय भाषाओं के अन्तर्सम्बन्ध बढ़ने और गहरे होने के स्थान पर दुरूह होते जा रहे हैं। जिस पर दृष्टि डालने की आवश्यकता है।

भारत सांस्कृतिक विविधता के साथ ही साथ भाषाई विविधता वाला देश है। कोस–कोस पर बदले पानी चार कोस पर बदले वाणी की कहावत इसी परिपेक्ष्य में प्रचलित रही है। अनेक बदलावों के बाद भी आज भारत की सांस्कृतिक और भाषाई विविधता अपने मूल स्वरूप में कायम दिखती है। जब हम भाषाई विविधता की बात करते हैं तो, हमारे सामने भारत में बोली जाने वाली प्रादेशिक भाषाओं की बात ही नहीं आती, बल्कि सैकड़ों की तादाद में बोली जाने वाली बोलियां भी इसमें सम्मिलित होती हैं। भारतीय संस्कृति और समाज के विकास में किसी के योगदान को नकारा नहीं जा सकता है। हमारे लिए जितनी महत्वपूर्ण हिंदी है उतनी ही तमिल, तेलुगु, कन्नड़, पंजाबी, डोगरी, बोडो, मलयालम, बंगला, असमिया, मराठी और कश्मीरी है। यदि हिंदी राजभाषा और राष्ट्र भाषा रूपी गंगा की धारा है तो अन्य प्रदेशिक भाषाएं भी कवेरी, सतलज और ब्रह्मपुत्र की धाराएं हैं। जैसे सभी नदियां बहते हुए समुद्र में मिलकर एक हो जाती हैं, उसी तरह से भारत की सभी भाषाओं का मिलान भी निरंतर होता रहता है। सुब्रह्मण्यम भारतीय ने कभी कहा था– ''भारत माता भले ही 18 भाषाएं (अब 22 हो गई हैं) बोलती हों, फिर भी उसकी चिन्तन प्रक्रिया एक ही है।''

इस बात को नहीं नकारा जा सकता कि भारतीय भाषाओं के अन्तर्सम्बन्ध तथा भारतीय संस्कृति की विराटता आज कहीं पहले से अधिक महत्व के हो गये हैं। अपनी पहचान के लिए हमें हर हाल में, इस सम्बन्ध को समझना और जीना होगा। बिना इसके भारतीयता का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। इन्हीं से हमारी पहचान है। इस लिए समय की आवश्यकता को समझते हुए प्रत्येक देशवासी को हिन्दी या भारतीय भाषाओं के सम्बन्धों पर सवाल न उठाकर अंग्रेजी की बढ़ती एकाधिकारिता पर सवाल उठाने चाहिए और इससे

सावधान रहना चाहिए। अब समय आ गया है कि हिन्दीतर भाषी प्रदेशों को नए सिरे से हिन्दी प्रदेशों के अपने सम्बन्धों पर विचार–विमर्श करना चाहिए।

भाषा के बिना न तो किसी देश की कल्पना की जा सकती है और न तो किसी समाज की ही। इस लिए भाषा की उपेक्षा का मतलब स्वयं अपने अस्तित्व को ही नकारना। जैसे विविधताओं के बीच भी सांस्कृतिक आदन–प्रदान कभी नहीं रुकता, इसी तरह भाषाई विविधता के होते हुए भी भाषाओं के मध्य आदान–प्रदान नहीं रुकता। वह चाहे भाषाई संस्कृति के रूप में हो, या व्याकरणिक रूप में अथवा वचनात्मक रूप में हो। भाषाओं के अन्तर्सम्बन्ध को न तो रोका जा सकता है और न तो समाप्त ही किया जा सकता है।

हिन्दी हमारे देश की राज भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है। स्वतंत्रता के पहले भी यह सम्पर्क भाषा के रूप में प्रयोग की जाती रही है। यही कारण है कि हिंदी के अनेक शब्द, क्रियापद और संज्ञाएं भारत की अनेक प्रान्तीय भाषाओं में उसी अर्थ में या दूसरे अर्थ में मिल जाते हैं। इतना ही नहीं, हिन्दी की सहजता, वैज्ञानिकता और रागात्मकता भी भारत की प्रान्तीय भाषाओं में मिल जाती है। यह सब सहज रूप से हुआ है। हिन्दी के लिए जितना हिन्दी भाषा–भाषियों के लिए महत्व है उससे कहीं अधिक गैर हिन्दी भाषी के लिए, महत्व है। वह हिन्दी को उसके शुद्धात्मक रूप में अपनाने का कहीं अधिक प्रयास करता है।

हिन्दी बहती नदी की धारा की तरह सब के लिए उपयोगी और कल्याणकारी रही है। यही कारण है हिन्दीतर भाषा भाषी क्षेत्रों के हिन्दी उन्नायकों ने हिन्दी को जन भाषा के रूप में स्वीकार करते हुए इसके उत्थान के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। वह चाहे गुजराती भाषा भाषी महर्षि दयानन्द और गान्धी रहे हों, बंगाल के राजाराम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन और रवीन्द्र नाथ टैगोर, नेता सुभाष रहे हों, या महाराष्ट्र के नामदेव, गोखले और रानाडे रहे हों। इसी तरह तमिलनाडु के सुब्रह्मण्यम भारती, पंजाब के लाला लाजपत राय, आन्ध्र प्रदेश के प्रो. जी. सुन्दर रेड्डी जैसे अनेक अहिन्दी भाषा भाषी क्षेत्रों में हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए।

आज आवश्यकता है 'स्व' को समझा जाए। 'स्व' का मतलब स्वभाषा, स्वधर्म, स्व–संस्कृति, स्वराष्ट्र और स्वाभिमान को जीवन का अंग बनाया जाए। इससे राष्ट्र का चहुमुखी विकास होगा और गुलामी की सभी अभिव्यक्तियों से छुटकारा मिल सकेगा।

आर्ष क्रान्ति के सुधी पाठकों से

समाज सुधार, संस्कृति उन्नयन और धर्म जिज्ञासा क्षेत्र की अनेक पत्रिकाएं सोशल मीडिया पर आपने देखी और पढ़ी होगी । आर्ष क्रांति पत्रिका का तेवर और स्वरूप कैसा है इसे जानने की जिज्ञासा आपके मन में पैदा होती है, तो यह समझना चाहिए आप एक विचारवान और जिज्ञासु किस्म के बुद्धिमान व्यक्ति हैं । हमें आप जैसे क्रांतिकारी और प्रगति गामी विचारवान व्यक्ति का साथ चाहिए। फिर देर किस बात की । नीचे लिंक पर जाइए और फार्म भर कर हमें भेज दीजिए। अब आप जुड़ गए हैं ऐसी संस्था और पत्रिका से जो एक आदर्श समाज, उन्नतशील संस्कृति और मानव मूल्यों के धर्म की स्थापना के लिए कृतसंकल्प है । आप एक शुभ संकल्पवान व्यक्ति हैं और यह पत्रिका भी शुभ संकल्पों को मूर्त रूप देना चाहती है, एक आदर्श समाज निर्माण में हमारी संस्था और पत्रिका से जुड़कर आप अपना अमूल्य योगदान दे सकते हैं । आपका हमें इंतजार रहेगा।

इस लिंक पर क्लिक करके यह फार्म अवश्य भरें

http://bit.ly/aarshkranti

नोट – फॉर्म को भरने के लिए अपने मोबाइल / कम्प्यूटर में इन्टरनेट अवश्य चालू रखे

VARNA-ASHRAMAS MAKE US IDEAL

– ✍ Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

Vedic Culture is known as the culture of Four Varnas and Four Ashramas. The Four Varnas were designed to make an ideal society, and the Four Ashramas to make ideal individuals, both men and women. The Varnas were not fixed on the principle of birth, and the Ashramas not on simple arithmetic figures. Rather the Varnas were in accordance with the qualities and choices of individuals, and the Ashramas changing at the time of one achievement and then another.

The critics wrongly level the charge of hereditary fixation of varnas in Vedic Culture. Although most of the communities, like Christians and Muslims are so only on the basis of birth, and even the Buddhists, Jains and Sikhs, who had first emerged ideologically, became closed communities later on, the Varna System is not a hereditary system.

Basically, all Varnas have to perform their specific duties and responsibilities, as defined in the scriptures. As it is evident that the varnas are four, namely, Brahmins, Kshatriyas, Vaishyas and Shudras, their specefic duties are following.

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्।।

(Manusmriti: 1.88)

[The Brahmins have six duties—to study Vedas, to teach Vedas, to practice Havan for self, to perform Havan for others, to give donation, and to accept donation.]

The Brahmins are not to serve in lieu of money. They have just to think, teach, preach and advise for free, and not to demand any money or property. The entire society, in turn, will take care of their families. This was an ideal system under which the national society used to receive valuable and precious thoughts for handfuls of money and simple commodities.

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः।।

(Manusmriti: 1.89)

[The Kshatriyas have five duties—to protect the subjects from external and

internal attacts, to give donation, to perform daily havan, to study Vedas, and always to remain free from sensual indulgence.]

In other words, the warrior class of Kshatriyas would give its life at each and every occasion to protect the subjects and thus assuring them all to do their business fearlessly. In modern times, all nations have their warrior classes to call them military or police. The Vedic Society used to call them Kshatriyas.

पशूनां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।।

(Manusmriti: 1.90)

[The Vaishyas have seven duties—to rear the cattle, to give donations, to perform daily havan, to study Vedas, to deal in all trades, to give debts, and to do agriculture.]

The Business Class has many a thing to do for the prosperity of a nation. India had earliar been called 'the golden bird' by foreigners. This proves that its men of agriculture, animal husbandry and trade had delivered the goods to their best. However, this class exists in all countries. In Vedic System, it is called the Vaishya Varna.

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया।।

(Manusmriti: 1.91)

[The Shudras have only one duty to perform, and this is to serve all other varnas bonafidely.]

The special features of the Varna System have been as follows. First, the Brahmins had to live a life of great austerity. They had no option to compromise with knowledge or chastity. They enjoyed highest respect with most austerity and least belonging. Secondly, the Kshatriyas' life was under the nation and not under their family. Even if they were the kings, they were second in respect after the Brahmins. Thirdly, the Vaishyas needed not surrender their lives or belongings. However, even if most moneyed, they were third in respect after the men of knowledge and power.

Fourthly, the Fourth Varna was least bothered. However, with the passage of centuries and entrance of foreigners, they were treated as untouchables, averse to the original constitution. This stigma continues to exist more or less on our society even today. Fifthly, as a system the Varna System worked for the optimum benefit of society. Persons of every expertise were available in sufficient number, and all faculties flourished simultaneously and not at

each others' cost.

Vedic Culture understands that life is a continuous journey, which neither ends after a hundred years, nor a good or bad deed passes unaccounted. The Four Ashramas, namely, Brahmcharya, Grihastha, Vanaprastha and Samnyasa were designed to transform individuals into Ideal Persons, men and women.

ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेद् गृही भूत्वा वनी भवेद् वनी भूत्वा प्रव्रजेत्।।

(Shatapath Brahmana)

[After Brahmcharya enter into Family Life, thence into Vanaprastha and finally into Samnyasa.]

This four-step ladder system is prevalent in many countries and many societies. People free from conjugal behaviour and free from earning money can be noticed in a number of countries. But the Vedic Ashrama System is something unique, of which the salient features are as follows.

First, the Brahmcharya Ashrama is not merely physical. It is a pious discipline of body, mind and soul. The Boys have to restrain themselves for at least upto the age of 25 and the girls upto 16, without a fault. Simultaneously, they have to learn the scriptures, i. e., all the four or three or two or only one Veda.

Secondly, then a similar boy can marry a similar girl. Their marriage is a one-to-one relationship, permanent and unbreakable. The couple would perform daily sandhya, havan and other duties of their Varna without fail. They would rear their children according to the Vedic discipline.

Thirdly, a Vanaprasthin would have no relation with any person except his wife, and that too not conjugal. Fourthly, the Samnyasin would be free from all relations, save God. He would meditate on God, and reform the society.

Thus Ashramas were designed for the vertical and Varnas for our horizontal accomplishment. If you remove two bricks, the whole building would lose perfectness. Hence are Varnas and Ashramas, the two bricks in the building of Vedic Culture. Save two bricks and the Ideal Building will take care of itself.

योगदर्शन के प्रथम पाद - समाधिपाद पर योगसूत्रों और उनके व्यासभाष्य पर आधारित ५० प्रश्नों की प्रश्नमाला हमारी www.vedyog.net website पर online test के रूप में उपलब्ध है। हम हिन्दी एवम अंग्रेजी दोनों माध्यम से परीक्षा दे सकते है। इसमें हर प्रश्न के उत्तर हेतु ४ विकल्प दिए गए हैं। जिसमें आपको सही विकल्प को चुनना है। परीक्षा के माध्यम से हम अपने योगदर्शन से संबंधित ज्ञान की स्थिति का आकंलन कर पायेंगे।

वेद क्रान्ति

डॉ० सत्यकाम आर्य
लखनऊ

यस्य कुर्मो गृहे हविस्तमग्ने वर्ध्दया त्वम्।
तस्मै देवाऽअधि ब्रुवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः।।
– यजुर्वेद १७ • ५२
ऋषि – अप्रतिरथः। देवता – अग्निः।
छन्द – निचृद् आर्षी अनुष्टुप।

अंग्रेजी अनुवाद – O adorable Lord, may you make him prosper in Whose house we perform sacrifice. May the bounties of Nature bless him with comforts, and so may this Lord of knowledge.

अर्थ – काम, क्रोध और लोभादि षड्विकारों में न फंसने वाला प्रभुपरायण अप्रतिरथ नाम ऋषि (ऋषि दर्शने) ईश्वर से स्तुतिपूर्ण प्रार्थना करते हैं कि प्राणिमात्र की समुन्नति के आधारभूत साधन हे तेजोमय यज्ञाग्नि (अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते) जगदीश्वर ! जिस गृह (गृहाः कस्माद् गृह्णन्तीतिः सताम्) में सम्पन्न हो रहे आध्यात्मिक सत्संग में हम गोघृत तथा मिष्ठ, सुगन्धित, रोगनाशक और पुष्टिकारक औषधियां मिश्रित हवन – सामग्री की शुभ यज्ञकुण्ड में हवि देते हैं, अर्थात् यज्ञोपरान्त यज्ञशेष के रूप में उसे भोग करते हैं। उस गृहस्वामी यजमान और उसके परिवार जनों को आयु, विद्या, यश और बल आदि की दृष्टि से समुन्नतिशील बनायें। हे भगवन्! परिवार में नियमित अतिथियज्ञ करने वाले श्रद्धालु यजमान को सभी अभ्यागत विद्वत् वरेण्य ज्ञान–कर्म, उपासना और विज्ञान विषयक कल्याणकारी सत्योपदेश दें। उस धर्मपरायण यजमान को देवता सदृश विद्वान् (विद्वांसो हि देवाः) तो उपदेशामृत पान करायें ही, निर्भ्रान्त ज्ञान का अधिपति ब्रह्मणस्पति (ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मणः पाता वा पालयिता वा) परमेश्वर उस यजमान को सयुजासखारूप में उसे सदा उत्तम प्रेरणा प्रदान करे। नियमित अतिथियज्ञ, अतिथि विद्वानों के धर्मोपदेशक से प्राप्त प्रेरणा और आत्मा में प्रभु–संदेश सुनने की शक्ति में सकारात्मक सह– सम्बन्ध है।

यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि।
अस्माकमंशुं मघवन् पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय।।
– सामवेद – २६८
ऋषिः –– वामदेवः गौतमः। देवता –– इन्द्रः।
छन्दः –– बृहती।

अंग्रेजी अनुवाद – While the resplendent Lord, the possessor of riches, punishes the offenders of divine law and order, He turns them out beyond the pale of noble assembly. May we, by the grace of Lord, carry forward to success our benevolent projects undertaken to serve the society.

अर्थ – हे परमैश्वर्यवान् न्यायकारी (न्यायं कर्तुं शीलस्य स न्यायकारीश्वरः) ईश्वर! तुम सर्वशक्तिसम्पन्न (यः सर्वं जगत् कर्तुं शक्नोति स शक्तिः) होने से जगत् के सर्वश्रेष्ठ शासनकर्त्ता , नियामक और नियन्ता हो। मेरी आपसे से करबद्ध विनय है कि जिस प्रकार तुम अन्तर्जगत् में षड्विकारों और असद्वृत्तियों को धिक्कारित और प्रताड़ित करके सद्वृत्तियों को प्रेरित और प्रोत्साहित करते हो, भगवन् ! उसी प्रकार बाह्य जगत् में जो अयाज्ञिक और सत्कर्महीन व्यक्ति परहितकारिणी सभाओं, सुधारक संगठनों और निर्माणकारी समितियों के शीर्ष पदों पर आसीन होकर भ्रष्टाचार फैला रहे हैं, तुम उन्हें समाज के कल्याणार्थ तत्काल प्रभाव से पदच्युत कर दो। हे ऐश्वर्याधिपति! तुमसे मुहुर्मुहुः प्रार्थना है कि तुम्हारी असीम अनुकम्पा से ही हम अमृतपुत्रों के पास जो भी पालक व पोषक स्पृहणीय धन– सम्पदादि है, उसे हम राष्ट्र – यज्ञिय अंश समझकर उदारतापूर्वक सत्पात्रों में बांट दें और जो सद्ज्ञान, सद्विचार और सच्चरित्रजन्य संस्कार हैं, उन्हें भी हम आपकी की ही निधि मानकर सुपात्रों में प्रसन्नतापूर्वक बिखेर दें । हे प्रभो! हमारी यह प्रार्थना पूर्ण हो।

जीवनीशक्ति व शरीर के नवनिर्माण के लिए निष्क्रमण संस्कार

– ✍ डॉ. विक्रम कुमार विवेकी

नामकरण संस्कार के उपरान्त वैदिक परम्परा में निष्क्रमण संस्कार करने का विधान है। यह संस्कार शिशु जन्म के सामान्यतः चौथे माह या जो उपयुक्त लगे करना चाहिए। निष्क्रमण का अर्थ –निकलना है। निष्क्रमण संस्कार उसको कहते हैं जिसमें बालक को घर से बाहर जहाँ की वायु शुद्ध हो, वहाँ भ्रमण कराना होता है। इस दौरान सूर्य और चन्द्र का दर्शन शिशु को कराया जाता है। क्यों कराया जाता है? इसके पीछे कोई वैज्ञानिक दृष्टिकोण है या मात्र परम्परा का निर्वाह के कारण किया जाता है? पहली बात यह समझने की है कि वैदिक परम्रा वाले सभी तरह के कर्मकाण्ड या संस्कारों के पीछे धार्मिक, आध्यत्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कारण तो होते ही हैं वैज्ञानिक कारण भी होते हैं। सूर्य और चन्द्रदर्शन के पीछे वैज्ञानिक और संस्कारगत कारण होते हैं। सूर्य दर्शन या वायु में भ्रमण को संस्कार पूर्वक कराने के पीछे शिशु जन्म के बाद जीवनीशक्ति के लिए और जीवन के नवनिर्माण का संसार में प्रथम वह कृत्य है जिससे जीवन में अनेक प्रकार की पूर्णता आती है। वैदिक ऋचाओं में सूर्य को शक्ति–पुंज माना गया है। दूसरा बड़ा कारण शिशु को प्राकृतिक वातावरण से साक्षात्कार कराना है। प्राणों का जागरण, अंग–प्रत्यगों में स्फूर्ति और शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से इसका विशेष महत्व है। लेख में इन्हीं अनेक बातों का तर्कसंगत ढंग से वर्णन किया गया है। शिक्षाशास्त्री और लेखक डॉ. विक्रम कुमार विवेकी द्वारा लिखित यह लेख पाठकों के लिए उपयोगी होगा, ऐसा विश्वास है।

– सम्पादक

निष्क्रमण का अर्थ 'निकलना' माना गया है। निष्क्रमण संस्कार उसको कहते हैं जिसमें बालक को घर से बाहर जहाँ की वायु शुद्ध हो, वहाँ भ्रमण कराना होता है। जब ठीक समझे तब या चौथे मास में तो अवश्य ही शिशु को बाहर घुमाना चाहिए और सूर्य और चन्द्र का दर्शन कराना चाहिए। जिज्ञासा हो सकती है कि प्रथम बार सूर्य दर्शन या वायु में भ्रमण को संस्कार पूर्वक कराने के पीछे क्या उद्देश्य हो सकता है? प्रथमतः सूर्य रश्मियों के संसर्ग में आने पर शिशु में वैज्ञानिक परिवर्तन होता है। वैदिक ऋचाओं में सूर्य को शक्ति–पुंज माना गया है। जीवनी शक्ति का उद्गम स्थल सूर्य ही है। सूर्य वह स्रोत है जहाँ से विश्व के कण–कण में जीवनीशक्ति प्रवाहित हो रही है। ऊष्मा, गति, प्रगति सब सूर्य के कारण से हैं। स्वस्थ रहने व दीर्धायु के लिए शुद्ध, ताजा व स्फूर्तिदायक वायु की आवश्यकता होती है। सूर्य की जीवनप्रद किरणों से अनुभावित वायु ही शुद्ध व जीवनप्रद है। वायु में स्थित जीवनीशक्ति सूर्य की किरणों के अलावा अन्य किसी कारण से नहीं है। इस वायु में शरीर को स्वस्थ बनाने व जीवन प्रदान करने की अपूर्व क्षमता होती है। जब सौर शक्ति से आविष्ट शुद्ध वायु को हम फेफडों में भरते हैं, तब अंग–प्रत्यंग में विद्युत शक्ति दौडने लगती है। यह शक्ति शरीर का नवनिर्माण करती है। शरीर रूपी यन्त्र–व्यवस्था का नवीकरण करती है। शरीर के साथ–साथ मन को भी प्रभावित करती है।

प्रसूति–गृह से शिशु को सूर्य के प्रकाश तथा शुद्ध वायु में लाने के लिए इस निष्क्रमण क्रिया को संस्कार के रूप में इस लिए किया जाता है कि बालक स्वस्थ व निरोग रहे। उसके जीवन में प्राकृतिक जीवन बिताने की क्षमता उत्पन्न हो। प्रकृति जीवन के लिए आरोग्यदायिका व स्वस्थ्यप्रदा होती है। अतः पहली बार शिशु को प्रकृति के निकट लाने की क्रिया को संस्कार का रूप दिया गया है। चन्द्रमा–दर्शन का विधान भी अत्युपयुक्त है। यह सारी सृष्टि अग्नितत्त्व और सोमतत्त्व से युक्त है। 'अग्निसोमात्मकं जगत्'। सोम= चन्द्रमा पुष्टिकारक तत्त्वों का प्रतिनिधि है। चन्द्रमा आह्लादक, शान्तिदायक है।

शीतलता व शान्ति इसके स्वाभाविक गुण हैं। बालक मन से पुष्ट, शरीर से स्वस्थ, समाज के लिए आह्लादक व शान्तिदायक बने इसलिए इस संस्कार में चन्द्रदर्शन का भी विधान है।

यह संस्कार पिता ही करता है। पिता की अनुपस्थिति में चाचा, दादा या विद्वान् पण्डित ही करता है। घर में शिशु–पालन माता का तथा बाहर का कर्तव्य पिता का होता है, यह संकेत इस संस्कार से मिलता है। इस संस्कार का भी मूल वैदिक ऋचाओं में प्राप्त होता है। ऋग्वेद 10/5/3 , 7/56/16 की ऋचाएँ पुत्र अग्नि एवं पुत्र वायु के बहिर्निष्क्रमण की चर्चा करती हैं। मानव पुत्र भी अग्नि, वायु, सूर्य व सोम की तरह अपने घर के संकुचित क्षेत्र से बाहर निकलकर मानसिक उल्लास, स्वस्थ शरीर व जीवन उत्कर्ष के लिए बाहर आयें इसलिए पारस्कर गृह्यसूत्र (!/17) गोभि. गृह्यसूत्र (2/8/1) खादिरगृह्यसूत्र (2/3/1) तथा मानव गृह्यसूत्र (1/19!1) आदि में निष्क्रमण संस्कार का विधान किया गया है। इस संस्कार में विनियुक्त मन्त्र नानाविध उपदेश एवं सावधानियाँ बरतने का सन्देश देते हैं।

तच्चक्षर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं
जीवेम शरदः शतं।।

यह यजुर्वेदीय ऋचा घर से बाहर निकले शिशु के शतायु होने की कामना प्रस्तुत करती है। अथर्ववेदीय ऋचा *'मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।'* शिशु के घर में आने, घर से जाने की गतिविधि को मधुर व सुखदायक रखने का सन्देश देती है। *'गवां त्वा हिकडारेणावजिघ्रामि' यह ऋचा'* जैसे गाय रंभाते हुए बछड़े को सूघती है वैसे में पिता तुझ पुत्र को सूंघता हूं।' सन्देश के माध्यम से कहती है कि चाहे सन्तान घर से बाहर कितनी ही दूर क्यों न चली जायें परन्तु गाय और बछड़े की तरह वे परस्पर वात्सल्य रस से सिक्त रहें, प्रेम व स्नेह में सनें रहें, बाहर–भीतर आते–जाते रहें।

सच्चे शिक्षक

एक हाथ में कर्म,
दूसरे से फल की अभिलाषा।
बचपन की घुट्टी में सीखे,
जो गीता की भाषा।
अन्दर से मजबूर मगर, बाहर मजबूत इरादे।
एक तीर से एक साथ, दो जगह निशाना साधे
बाहर से जो हरिश्चंद्र भीतर याचक होते हैं।
ऐसे जन ही दुनिया में सच्चे शिक्षक होते हैं।

अपने सपने मार दूसरों की किस्मत चमकाते।
औरों के हित, जल दीपक सम,
नया उजाला लाते।
तिरस्कार की फिक्र जिन्हें
ना चिंता है स्वागत की।
निज कर्तव्य समझ,
करते बस सेवा अभ्यागत की।
ऊपर से कर्कश-कठोर
मन से नाजुक होते हैं।
ऐसे जन ही दुनिया में सच्चे शिक्षक होते हैं।

जिनकी दिनचर्या से अगणित छात्र प्रेरणा पाते,
जिनके सत्य-न्याय की कसमें दुश्मन भी है खाते,
जिन्हें देखकर नैतिकता के नियम बनाए जाते,
जो शिक्षक के साथ कर्म में कौशल हैं सिखलाते,
स्वयं देवता जिनके आगे नतमस्तक होते हैं
ऐसे जनहित दुनिया में सच्चे शिक्षक होते हैं।।

— ✍ वेद कुमार दीक्षित
देवास

अंग्रेजी की उपयोगिता और अनिवार्यता : एक विमर्श

– ✍ डॉ. सीतेश आलोक

विश्व में भारत ही एक मात्र ऐसा देश है जिसकी कोई अपनी राष्ट्र भाषा नहीं है। कहने को तो 14 सितम्बर 1949 को हिन्दी को राजभाषा के रूप में संविधान में स्वीकार किया गया, लेकिन केंद्र सरकार का लगभग प्रत्येक कार्य अंग्रेजी में और राज्यों का अधिकांश कार्य उनकी प्रादेशिक भाषाओं में होता है। इसलिए हिन्दी राजभाषा मात्र कहने तक है। देश को राजनीतिक स्वतन्त्रता मिलने के बाद अंग्रेजी जिस तरह से राजकीय और अराजकीय संरक्षण में फूली–फलती आई है, उससे हिन्दी सहित भारत की सभी आंचलिक भाषाओं का पराभव हुआ। कहने को तो हम सभी स्वतन्त्र हैं, लेकिन सांस्कृतिक और भाषाई गुलामी पराधीनता काल से भी अधिक हमें ग्रसित किए हुए है। इसलिए सांस्कृतिक, भाषाई पराधीनता के साथ ही साथ आर्थिक पराधीनता में जीने के लिए अभिशप्त हैं। यह अभिशाप हमारे ज्ञान–गौरव और, सम्मान–गौरव दोनों के लिए अत्यन्त हानिकारक है। तथाकथित विकास एवं प्रगति में हमने अपना स्वाभिमान, सम्मान, गौरव, आत्म–जीवन्तता और सांस्कृतिक चेतना को खण्ड–खण्ड होने दिया। शिक्षा, संस्कार, पत्रकारिता, राजकाज, शासन–प्रशासन, नौकरी और व्यापार हर क्षेत्र में हमने अंग्रेजी को अपनाया ही नहीं बल्कि उसे अपनी उच्चता, विकास, प्रगति और ज्ञान का मानक भी बना लिया। हमारा अंग्रेजी से न तो द्वेष है और न तो विरोध ही, लेकिन अंग्रेजी यदि भारतीय राजसत्ता, न्याय, शिक्षा, शासन–प्रशासन, नौकरी, व्यापार और नवाचार का भाग्यविधाता बन जाए तो, यह भारत के लिए सबसे अधिक चिन्ता और आत्म–हनन का विषय है। क्योंकि पराई भाषा और संस्कृति से किसी भी देश की उन्नति, गौरव, पहचान और स्वाभिमान को हानि ही नहीं पहुँचती–बल्कि उसके आधार की ही समाप्ति हो जाती है। राजनीतिक स्वतन्त्रता के 74 वर्षों में हमने पाया कम है, खोया अधिक। इतना तो पराधीनता के समय भी हमने नहीं खोया था जितना स्वाधीनता में खोया। अंग्रेजी की फैलती विष–बेल पर एक मौलिक चितन के माध्यम से आप पाठकों को 'हिन्दी राष्ट्र भाषा कब,' विषय पर चिन्तन के लिए आमन्त्रित करता हूँ। महान् साहित्यकार, समाजसेवी और चिन्तक डॉ. सीतेश आलोक जी द्वारा लिखित यह लेख भाषा सम्बन्धी कई दुराग्रहों और दुरमतियों को खोलता है। आशा है आप सभी लेख को मनोयोग से पढ़ेगे ही नहीं बल्कि इस पर अपनी बेबाक राय भी देंगे।

– सम्पादक

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में भाषा का प्रश्न उठा था, विशेषकर इसलिये कि भारत एक विशाल देश है और उसके विभिन्न क्षेत्रों में अनेक भाषाएँ प्रचलित थीं। फिर भी सब सहमत थे कि देश की अपनी एक ऐसी सम्पर्क भाषा होनी चाहिए, जो राजभाषा का कार्य भी करे। भाषाई जनसंख्या के आधार पर देश के नेताओं की यह मान्यता थी कि हिन्दी ही इस कार्य के लिए सर्वथा उपयुक्त होगी। हिन्दी को क्षेत्रीय प्रसार के नाते सर्वाधिक लोकप्रियता पहले ही प्राप्त थी–और, मूल संस्कृत के निकट होने के कारण, तमिल को छोड़कर, अन्य सभी भाषाओं से हिन्दी की आंशिक समरूपता भी सर्वविदित थी।

यह कहना सच नहीं होगा कि उस समय हिन्दी का विरोध नहीं था....विरोध तो था.....तमिल, बाँग्ला, उर्दू, जैसे कई भाषाभाषियों की ओर से, परन्तु वे हिन्दी विरोधी आपस में किसी अन्य भाषा पर सहमत हों, ऐसा भी नहीं था। हिन्दी के तथाकथित विरोधियों के पास भी हिन्दी को काई विकल्प नहीं था। कुछ लोगों का हिन्दी विरोध मात्र हिन्दी के रूप को लेकर था। उनमें से बाँग्ला जैसे कुछ घटकों का मत था कि हिन्दी संस्कृतनिष्ठ होनी चाहिए, क्योंकि तभी वह उनकी तथा अधिकांश अन्य भारतीय भाषाओं के निकट हो सकेगी, और उर्दू से प्रभावित कुछ घटकों का मत था कि हिन्दी आम बोलचाल की भाषा वाली होनी चाहिए अन्यथा वह हास्यास्पद एवं क्लिष्ट बन जाएगी और उन्हें स्वीकार्य नहीं होंगी। परन्तु आमभाषा के

सिद्धान्त पर गहराई से विचार एवं विश्लेषण किया जाना चाहिए क्योंकि आम भाषा का कोई सुनिश्चित मानक नहीं होता। कहाँ की आम भाषा? दिल्ली की, अलाहाबाद की, भोपाल की या जयपुर अथवा गोरखपुर–बनारस की? इन सभी में धरती–आकाश का अन्तर था और फिर साहित्यिक एवं सुसंस्कृत भाषा और जन साधारण की भाषा में तो हमेशा ही, हर जगह ही, अन्तर रहा है। साहित्यिक, सुसंस्कृत एवं क्षेत्रीय भाषाएँ अपना रूप पा जाती हैं। प्रशासन एवं विद्यालयों का काम उस मानक भाषा को एक ऐसा व्यापक रूप प्रदान करना है जिससे सभी उपभाषाएँ उसके आसपास ही स्थित हों। यदि कोई सुनिश्चित मानक न हो तो उपभाषाओं के बीच की पारस्परिक दूरी बढ़ती जाएगी।

दुःख अथवा दुर्भाग्य का विषय यह नहीं है कि किसी व्यक्ति विशेष के पूर्वाग्रह अथवा सत्ता की राजनीति के कारण हिन्दी को उसका अधिकृत स्थान नहीं मिला....दुर्भाग्य का विषय यह है कि इस षड्यंत्र में देश को कोई भी सम्पर्क भाषा नहीं मिल पाई।

हिन्दी विरोध में, विकल्प के रूप में, अंग्रेजी को राजभाषा का स्थान प्राप्त हो गया....उस समय भी दक्षिण में अेंग्रजी शिक्षा का स्तर काफ़ी अच्छा था और यही कारण है कि राष्ट्रीय प्रशासनिक सेवाओं में दक्षिण के प्रतियोगियों का प्रतिनिधित्व अधिक होता रहा। दक्षिण क्षेत्रों में यह आशंका भी थी कि हिन्दी यदि राष्ट्रभाषा बनी तो प्रशासनिक सेवाओं में उनका वर्चस्व समाप्त हो जाएगा। इस समस्या का क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व के आधार पर सम्भवतः कोई हल ढूँढा जा सकता था, परन्तु हिन्दी विरोध ने इस दिशा में कोई प्रगति नहीं होने दी।

अंग्रेजी के समर्थकों के अपने अलग तर्क थे–एक तो यह कि अंग्रेजी पहले ही राजकाज की भाषा थी.....उसे बनाए रखना, विकल्प ढूँढकर उसे लागू करने की अपेक्षा, सरल था। दूसरे यह कि देश को एक सम्पर्क भाषा की आवश्यकता है–तो वह सम्पर्क भाषा अंग्रेजी भी हो सकती है और फिर यह कि अंग्रेजी अन्तरराष्ट्रीय भाषा है।, हिन्दी में आधुनिक तकनीकी शब्द नहीं हैं, विज्ञान, चिकित्सा, इंजीनियरिंग आदि की पुस्तकं नहीं हैं...आदि।

वास्तविकता इन तर्कों से भिन्न थी–तब भी, जबकि देश स्वाधीन हुआ था और आज भी जबकि देश स्वतंत्रता के अनेक दशक पूरे कर चुका है। अंग्रेजी देश की सम्पर्क भाषा का कार्य न तब कर सकती थी और न आज कर सकती है। तब देश की अधिक से अधिक दो प्रतिशत जनसंख्या अंग्रेजी समझती थी और आज, इन सत्तर सालों में शिक्षा के समुचित प्रचार–प्रसार के बाद, अधिक से अधिक चार प्रतिशत लोग अेंग्रजी समझते होंगे।

अंग्रेजी राजकाज की भाषा बन गई है यह बात अवश्य सच है–परन्तु आंशिक सच। जहाँ केंन्द्रीय कार्यालयों में लगभग पूरी तरह कार्य अंग्रेजी में चलता है, अधिकांश राज्यों में क्षेत्रीय भाषाएँ ही प्रयोग की जा रही हैं। राज्यों के पारप्परिक पत्राचार में बहुधा काम या तो अशुद्ध अंग्रेजी में होता है, या स्थानीय भाषा के साथ संलग्न अंग्रेजी अनुवाद के माध्यम से।

अधिकांश प्रशासनिक अथवा अर्ध–प्रशासनिक व्यवहार में अंग्रेजी के साथ हिन्दी के प्रयोग द्वारा भी किया जा सकता था। इतना ही नहीं, कुछ वर्षों में हिन्दी और अधिक क्षेत्रों में विस्तार पा सकती थी क्योंकि भारतीय क्षेत्रों में अेंग्रजी की अपेक्षा हिन्दी ग्रहण करना अधिक सरल है। परन्तु कठिनाई मात्र इच्छा–शक्ति की थी।

इस हिन्दी विरोधी नीति में अंग्रेजी का वास्तविक प्रभाव मूलरूप से नवधनाढ्यों और ग़ैर–सरकारी संस्थानों में बढ़ा। अंग्रेजी 'स्टेटस–सिमबल' बन गई–उच्च एवं अभिजात्य वर्ग की भाषा। उच्च वर्गीय परिवारों में पले कुत्ते–बिल्ली भी अंग्रेजी में आदेश पाने लगे–'सिट डाउन,' 'गो देयर', 'कम हियर', आदि... उनकी देखा–देखी उनसे सम्बन्धित नौकर–चाकर भी यथाशक्ति दो–चार शब्द अंग्रेजी बोलने की चेष्ठा करने लगे। दफ़्तरों–घरों में भी नाम–पट राम चन्द्र सिंह और वीरेन्द्र कुमार के स्थान पर आर.सी. सिंह और वी. कुमार नाम लगने लगे।

दुर्भाग्यपूर्ण वास्तविकता यह भी है कि वह धनाढ्य वर्ग, जिसका अस्तित्व देश की जनसंख्या में किसी भी प्रकार दस प्रतिशत से अधिक नहीं है, देश की आर्थिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था को संचालित करता है। उसके पास अपने बच्चों को उच्च शिक्षा देने के साधन भी हैं और उपभोग की सामग्री खरीदने के लिए

पर्याप्त धन भी। वह अपने बच्चों को डॉक्टर, इंजीनियर, प्रशासक, उद्योगपति आदि बनाने के लिए भी अंग्रेजी पढ़ाता है और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों आदि में लगाने, अथवा इंग्लैंड, अमेरिका आदि भेजने के लिए भी। ऐसी सभी सम्भावनाओं के लिए उसे अपने बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाना आवश्यक लगता है। इस प्रकार अंग्रेजी बोलने में व्यक्ति को लगने लगा कि वह अधिक सुसंस्कृत समझा जाएगा–उसका प्रभाव अधिक पड़ेगा। मित्रों–सम्बन्धियों के बीच लोग अपने बच्चों द्वारा 'पोयम' सुनवाने लगे....उन्हें 'बाबा ब्लैकशीप' और 'पूसी कैट' व्हयअर हैव यू बीन' रटवाने लगे, और आपस में यह कहकर गर्व अनुभव करने लगे कि उनके बच्चे पच्चीस नहीं समझते.....या नीला–लाल नहीं समझते–उन्हें ट्वंटी फ़ाइव या ब्ल्यू–रैड कहकर बताना पड़ता है।

इसी धनाढ्य वर्ग पर बहुत हद तक आश्रित होता है देश का व्यापार और उद्योग। उन्हें प्रभावित करके अपने उत्पादन की बिक्री के लिए उद्योग एवं व्यापारिक संस्थान अंग्रेजी का सहारा लेते हैं। विज्ञापनों में अंग्रेजी की बाढ़ आती है और रेस्तराँ हो या दुकान, क्लब हो या होटल, हर जगह 'गुड ईवनिंग सर' 'वेलकम सर' कहकर दरवाजा खोलने, बंद करने वाला दरबान तैनात हो जाता है। अंग्रेजी बोलने वाली रिसेप्शनिस्ट और टेलीफ़ोन आपरेटर को प्राथमिकता प्राप्त होती है। इस प्रकार हर कोई, हर दूसरे को प्रभावित करने के लिए अंग्रेजी बोलने का प्रयत्न करता है।

फिर भला अन्य नागरिक इससे अछूते कैसे रहें। उन्हें लगता है कि सम्भ्रान्त होने की शर्त ही बन गई है अंग्रेजी। छोटे से छोटा दुकानदार भी वस्तुओं के मूल्य अंग्रेजी में बताता है। अपनी रसीद बुक अंग्रेजी में छपवाता है और पैसे लेते या वापस करते समय थैंक्यू कहना नहीं भूलता।

समाज में आर्थिक एवं शिक्षा की दृष्टि से निम्नतम श्रेणी के प्राणी भी अंग्रेजी के दो–एक वाक्य चुराने का प्रयास करते रहते हैं। शीघ्र ही उन्हें लाइट, टेबुल, चेयर, किचन, ड्रैंगरूम, टौवेल, बाथरूम आदि कहना आ जाता है और वे अवसर निकालकर ऐसे शब्द बोलते हुए यह जताने का प्रयत्न करते रहते हैं कि वह 'निपट गँवार' नहीं हैं।

इस प्रकार एक राष्ट्र भाषा के अभाव में अंग्रेजी दिन–प्रतिदिन अपनी छाप कुछ और गहराई के साथ छोड़ती जा रही है। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि अंग्रेजी जानने–पढ़ने में कोई बुराई है–परन्तु बुराई है, बहुत बुराई है, दासता की मनोवृति में, जिसके अधीन होकर हमारा बहुसंख्यक समाज अंग्रेजी के पीछे दौड़ रहा है। हम लोग अपने ही देश की अन्य कोई भाषा क्यों नहीं सीखते? हम लोग विश्व की अन्य कोई भाषा–जर्मन, फ्रेंच, जापानी, चीनी आदि, क्यों नहीं सीखते? अंग्रेजी में ही क्यों रचे–बसे रहते हैं? अधिकांश लोग मानें या न मानें, बस इसलिए कि अंग्रेजी हमारे शासकों की भाषा थी और आज अंग्रेजी आर्थिक रूप से समृद्ध कुछ बड़े देशों की भाषा है। बाज़ार में कोई व्यापारी या सड़क चलता अनजान राहगीर आप से अंग्रेजी में इसलिए नहीं बोलता कि अंग्रेजी अन्तरराष्ट्रीय भाषा है अथवा यह कि अंग्रेजी एक समर्थ भाषा है....वह अंग्रेजी बोलकर स्वयं आश्वस्त होना चाहता है कि उसे सम्मानित समझा जाएगा।

अगले अंक में शाश्वत.....

सदाचार – जो सृष्टि से लेके आज पर्यन्त सत्पुरूषों का वेदोक्त आचार चला आया है कि जिसमें सत्य का ही आचरण और असत्य का परित्याग किया है; उसको "सदाचार" कहते है।

विद्द्यापुस्तक – जो ईश्वरोक्त, सनातन , सत्यविध्यामय चार वेद हैं उनको "विद्द्यापुस्तक" कहते हैं ।

आचार्य – जो श्रेष्ठ आचार को ग्रहण कराके सब विद्याओं को पढा देवे; उनको "आचार्य कहते हैं ।

गुरू – जो वीर्यदान से लेके भोजनादि कराके पालन करता है; इससे पिता को "गुरू" कहते हैं और जो अपने सत्योपदेश से हृदय के अज्ञान रूपी अन्धकार मिटा देवे उनको भी "आचार्य" कहते हैं।

— महर्षि दयानन्द सरस्वती

हिन्दी बहूरानी है : एक ऐतिहासिक चिन्तन

– ✍ आचार्य ओम प्रकाश

हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने की छटपटाहट जैसी स्वतंत्रता के समय देशवासियों में थी, वह धीरे–धीरे समाप्त होती गई। आजादी के चौहत्तर वर्षों में सत्य तो यह है कि अंग्रेजी के प्रति सम्मोहन इस कदर बढ़ गया है कि यदि हिन्दी को विषय के रूप में पढ़ने की प्रतिबद्धता न हो तो दक्षिण ही नहीं उत्तर भारत के हजारों लोग शायद ही हिन्दी विषय को पढ़ना चाहें। यह इसलिए हुआ क्योंकि स्वतंत्रता के उपरान्त भाषा और लिपि को कभी गौरव या स्वाभिमान से जोड़ा ही नहीं गया। परिणाम सामने है। हिन्दी जो नौकरानी के रूप में होनी चाहिए थी वह राजरानी या बहूरानी बन गई है और हिन्दी को नौकरानी बना दिया गया है। हिन्दी बोलते समय मीडिया के लोग ही नहीं आम जनता भी बिना जरूरत के अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग इस लिए अधिक करते हैं कि जिससे यह पता चल सके कि फला व्यक्ति पढ़ा–लिखा और सभ्य है। यह हीनता, दीनता और गुलामी का परिचायक है। विश्व में भारत ही ऐसा देश है जहां का राजकाज और सामान्य व्यक्ति आजादी के 74 वर्ष गुजर जाने के बाद भी अपनी भाषा के प्रयोग में हीनता का अनुभव करता है। हम भले ही यह कहकर स्वयं को सन्तुष्ट कर लें कि हिन्दी विश्व स्तर पर फैल रही है, इसलिए अधिक चिंता की बात नहीं कि भारत की राष्ट्र भाषा कब बनती है। लेकिन सच यह है कि हम नई सांस्कृतिक और भाषाई गुलामी के जाल में फस चुके हैं और निकलना भी नहीं चाहते। प्रस्तुत लेख आचार्य ओम प्रकाश जी द्वारा लिखित है। आशा है पाठकगण ध्यान लगाकर पढ़ेगे ही नहीं अपितु चिन्तन भी करेंगे।

– सम्पादक

वर्तमान समय में विभिन्न दिवस मनाने का प्रचलन है। कभी योग दिवस, कभी खेल दिवस तो कभी शिक्षक दिवस आदि। इससे जागरूकता पैदा होती है। जन सामान्य के ध्यान में, उसके अवचेतन से चेतन मस्तिष्क में वह दिवस आ जाता है और व्यक्ति के मन में कुछ करने की, कुछ बनने की इच्छा पैदा होती है। इसी उद्देश्य से सितम्बर मास की 14 तारीख को भारत सरकार के विभिन्न मन्त्रालयों, उपक्रमों, कार्यालयों, राष्ट्रीयकृत बैंकों आदि में लम्बे समय से प्रतिवर्ष हिन्दी दिवस, हिन्दी सप्ताह अथवा हिन्दी पखवाड़ा मनाया जाता है। इसी तिथि को भारतीय संविधान सभा ने राजभाषा बनाने का निर्णय लिया था। संयोग से हिन्दी भाषा और साहित्य के विदेशी विद्वान् फादर कामिल बुल्के का जन्म भी पहली सितम्बर को बेलजियम में हुआ था। फादर ने रांची के एक स्थानीय कालेज में तुलसी जयंन्ती समारोह में बोलते हुए यह विचार व्यक्त किया था कि हिन्दी बहूरानी और अंग्रेजी नौकरानी है, परन्तु दुर्भाग्य से नौकरानी को बहूरानी का दर्जा मिला हुआ है। हिन्दी उपेक्षा की शिकार रही है–भारत को ब्रिटिश शासन से 15 अगसत 1947 को आजादी मिली थी। होना तो यह चाहिए कि देश के आजाद होने के साथ ही जब सत्ता जनता को सौंपी जा रही थी तो देश की जनभाषा चाहे जिस स्थिति में थी उसे देश की राजभाषा बना दिया जाता। हिन्दी भाषा जो स्वतंत्रता आन्दोलन की भी भाषा थी, वह संस्कृत की उत्तराधिकारी भाषा है। और सब तरह से एक अत्यन्त समृद्ध भाषा है। परन्तु देश के जिन कर्णधारों के हाथ में सौपी गई, प्रथम प्रधान मंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू के मन–मस्तिष्क में अंग्रेजी की तुलना में हिन्दी एक कमतर भाषा थी। वे अंग्रेजी भाषा के कायल थे और उनका सोचना भाषा की दृष्टि से सही भी था कि अंग्रेजी का महत्व दिनोदिन बढ़ता जायेगा अतः उन्हें यदि भारत को उन्नति की ओर ले जाना हे तो अंग्रेजी को माध्यम बनाए रखने से ही ले जा सकेंगे। परन्तु यह उनका एकांगी दुष्टिकोण था। विदेशी भाषा तो एक पराई भाषा होती है, उसमें कामचलाऊ ज्ञान भी बहुत थोड़े लोग प्राप्त कर पाते हैं। संविधान सभा में देश की राजभाषा कौन सी होनी चाहिए, इस विषय पर गहन और विस्तृत चर्चा हुई थी। संविधान सभा के

एक सदस्य श्री अलगू राय शास्त्री ने उसी समय जबकि हिन्दी को अभी 15 वर्ष तक सरकारी कामकाज की भाषा नहीं बनाने के सम्बन्ध में निर्णय लिया जा रहा था। यह मत प्रकट किया था कि इस तरह हिन्दी को अनंतकाल अपदस्त किया जा रहा है। लेकिन प्रधानमंत्री तो नेहरू थे और उनका दबदबा था। वे जो कहते थे वही अन्तिम सत्य माना जाता था कि नेहरू के मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को उनकी इच्छा के विरुद्ध बोलने की अथवा अपना मत रखने की हिम्मत नहीं होती थी। इस तरह हिन्दी की दुर्दशा हुई।

सन् 1920 से 1947 तक का समय आधुनिक भारत के इतिहास में गांधी युग के नाम से जाना जाता है। गांधीजी 9 जनवरी 1915 को स्वदेश लौटे थे। प्रारम्भ में उनके विचार हिन्दी को ही भावी भारत की राजभाषा बनाने के पक्ष में थे। 4 फरवरी 1916 को काशी हिन्दू विश्व विद्यालय में गांधीजी ने कहा, हमारी भाषा हमारे हृदय का प्रतिबिम्ब है। यदि हम अपनी भाषाओं के द्वारा अपने विचार प्रकट नहीं कर सकते, इस संसार से हमारा अस्तित्व ही मिट जाए तो अच्छा होगा। क्या कोई भी व्यक्ति स्वप्न में भी यह सोच सकता है कि अंग्रेजी भविष्य में भारत की राष्ट्र भाषा हो सकती है? छात्रों के मुख नहीं–नहीं की आवाज आती है। महात्मा गांधी ने दक्षिण भारतीय हिन्दी प्रचार सभा का गठन किया और अपने पुत्र देवदास गांधी को हिन्दी सिखाने के लिए दक्षिण भेजा था। परन्तु 1920 से 1922 आते–आते उनके विचारों में परिवर्तन आने लगा। वे अब हिन्दी की जगह हिन्दुस्तानी के पक्षधर बन गए थे। हिन्दुस्तानी भाषा को अपनाने पर उन्होंने बल दिया। हिन्दी हिन्दुस्तानी के विवाद ने भी हिन्दी को राजभाषा नहीं बनने दिया। जबकि प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक बीम्स कहते हैं कि हिन्दी और उर्दू को दो भिन्न भाषायें समझना बहुत बड़ी गलतफहमी है। केवल लिपि अलग है। नागरी प्रचारिणी सभा से भी उन्होंने त्यागपत्र दिया था। राजऋषि पुरुषोत्तमदास टण्डन के समझौते से भी उन्होंने अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं किया। उर्दू मिश्रित हिन्दी को वे हिन्दुस्तानी जबान कहते थे और अपने एक पत्र में उन्होंने सरदार पटेल को भी उर्दू सीखने की सलाह दी थी। जिसके उत्तर में सरदार पटले ने लिखा था, कि उर्दू सीखने की उनकी उम्र नहीं रही, दूसरे मुसलिम लीग और जिन्ना को अपने पक्ष में नहीं कर सकेंगे। इस तरह हिन्दी जो कि भारत के गौरव की भाषा है, भारतीय अस्मिता की भाषा है, वह लगातार उपेक्षित होती रही है। अंग्रेजी भाषा के प्रभुत्व के कारण भारतीय मनीषा कुंठित हो गई और करोड़ों भारतीय जो अंग्रेजी का ज्ञान अर्जित नहीं कर सकते रोजगार से वंचित हो जाते हैं जबकि प्रतिभा की उनमें कोई कमी नहीं थी। रूस में 66 भाषायें बोली जाती हैं लेकिन वहां की राष्ट्र भाषा रूसी भाषा है। भाषा के जानकार ठीक से समझते हैं कि संस्कृत भाषा समस्त भारतीय भाषाओं की जननी है और संविधान की आठवीं अनुसूची में परिगणित भाषायें जिनकी संख्या बढ़कर 22 हो गई हैं। प्रारम्भ में इस सूची में 18 भाषाओं को स्थान दिया गया था। भारत की इन समस्त भाषाओं में 40 प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। हिन्दी को राष्ट्र भाषा अथवा राजकाज की भाषा बनाने से अन्य भारतीय भाषाओं की कोई हानि होने वाली नहीं है। धातव्य है कि सन् 1802 में कोलकाता के फोर्ट विलियम कालेज में देश की एक सर्व मानव भाषा व प्रचलित भाषा सम्बन्धी गोष्ठी हुई। उसमें श्री डब्ल्यू पी वैले ने एक निबन्ध पढ़ा था जो कि आज भी अन्तरराष्ट्रीय केन्द्र नई दिल्ली में सुरक्षित है। श्री वैले ने तर्क दिये कि पूरे देश में हिन्दी ही एक मान्य भाषा है जो सर्वत्र बोली व समझी जाती है। लार्ड वैलेजली ने उसी वर्ष एक आदेश निकालकर उच्च पदो ंके हर उम्मीदवार के लिए हिन्दी का ज्ञान अनिवार्य कर दिया था। फादर कमिल बुल्के जो कि रांची में हिन्दी के प्राध्यापक थे, ने कहा था–''संसद की भाषा कोई भी भाषा ऐसी नहीं है जो सरलता और अभिव्यक्ति की दृष्टि से हिन्दी की बराबरी कर सके।'' राष्ट्रभाषा के साथ छल होता रहा। बार–बार हिन्दी लादने की बात की जाती है जब कि हिन्दी नहीं अंग्रेजी भारतीयों पर लादी हुई है। 20 दिसम्बर 1925 को कोलकाता में राष्ट्र भाषा सम्मेलन में स्वागत समिति के अध्यक्ष पद से बोलते सुभाष बोस ने कहा था कि अपनी–अपनी प्रान्तीय भाषाओं की उन्नति कीजिए, पर सारे प्रान्तों की भाषा का पद हिन्दी या हिन्दुस्तानी कोई मिला है। उन्होंने कहा कि यहां वे हिन्दी के प्रचार की बात नहीं करते, उनके लिए स्वामी दयानन्द ने जो कुछ किया और महात्मा गांधी जो कर रहे हैं, उसके लिए हम

सब उनके कृतज्ञ हैं।'

राष्ट्रीय शिक्षा नीति – अपनी भाषा ही सम्पूर्ण शिक्षा की नींव है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 आत्मनिर्भर भारत के निर्माण की दिशा में एक दूरदर्शी कदम है। नईशिक्षा नीति को भारत की आत्मा से जोड़ा गया है। इसमें भाषा और संस्कृति पर विशेष बल दिया गया है। चाहे रोजगार का प्रश्न हो या सामाजिक न्याय का, शोध अनुसंधान का विषय हो या भारतीय भाषाओं का, एन.ई.पी. की दूरगामी सिफारिशों के क्रियान्वयन की दिशा में मंथन शुरू हो गया है। बोलने में इस्तेमाल भाषा और काम में इस्तेमाल की जाने वाली भाषा के बीच संघर्ष पुराना है। परन्तु साहित्यिक भाषा और बोलचाल की भाषा प्रयोग में आना चाहिए। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने मानविकी एवं विज्ञान खण्ड की पारिभाषिक शब्दावली–शब्द संग्रह लेकर किये हों। शिक्षा, न्याय, प्रशासन तथा अन्य अनेक क्षेत्रों में जब हिन्दी में काम होने लगेगा तो क्रियान्वयन के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का भी साथ–साथ निराकरण होता रहेगा। भाषा का परिष्करण प्रयोग पर निर्भर है।

हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने के मार्ग में कठिनाइयां

केंन्द्र सरकार हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देने के लिए प्रतिबद्ध है, लेकिन यह आसान काम नहीं। इसलिए भी कि जो कार्य स्वतंत्रता मिलने के समय 15 अगस्त, 1947 के तुरन्त बाद आसानी से हो सकता था। जब राष्ट्रीयता के अन्दर प्रत्येक भारतवासी के हृदय में हिलोर ले रही थी, आज राष्ट्रीयता के अभाव में राजनीति एवं राजनेता उसे नहीं होने देना चाहेंगे। भारतीय संविधान में भाषा विषयक प्रावधानों में संशोधन करना पहली आवश्यकता है। अहिन्दी भाषा भाषी राज्यों को यह अधिकार दिया गया है कि जब तक एक भी राज्य नहीं चाहेगा, तब तक अंग्रेजी भाषा सरकारी कामकाज के रूप में चलती रहेगी। बहुमत के आधार पर केंद्र सरकार अपेक्षित संशोधन करा लेगी तो क्षेत्रीय राजनीति करने वाले नेता, अभिनेता राज्यों में हड़ताल–प्रदर्शन के रास्ते पर जनता को ले जायेंगे। विश्व हिन्दी दिवस पर जो जे.एन.यू में अराजक तत्त्वों ने विश्वविद्यालय द्वारा हिन्दी थोपने का आरोप लगाया था जबकि विरोधी इस वास्तविकता से अपरिचित नहीं है कि सत्य क्या है। एक न एक दिन तो हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को वांछित महत्त्व मिलकर रहेगा। गत वर्ष रांची में एक कार्यक्रम में केन्द्रीय गृहमन्त्री अमित शाह ने हिन्दी दिवस पर हिन्दी को देश की साक्षी भाषा के रूप में अपनाने की बात कही थी, तो दक्षिण भारत के जानेमाने अभिनेता रजनीकांत ने प्रतिक्रिया व्यक्त की थी कि किसी भी देश की एकता और प्रगति के लिये साक्षी भाषा अच्छी होती है, परन्तु दुर्भाग्य से भारत में वह सम्भव नहीं है। उन्होंने कहा कि हिन्दी को लागू करने के प्रयास का न सिर्फ दक्षिण भारतीय राज्यों में बल्कि उत्तर भारत के कई राज्यों में भी विरोध होगा। श्री रजनीकांत अब राजनीति में अपनी पैठ बनाने में लगे हैं। इसी तरह पी. चिम्बरम् जो कि कांग्रेस सरकार के मन्त्री रहे हैं का कहना था कि हिन्दी ही देश के लोगों को एक जुट कर सकती है, यह विचार एक खतरनाक विचार है। पी. चिदम्बरम् उन दिनों जेल में सजा भुगत रहे थे। इस तरह विरोध की राजनीति करने वाले नेताओं के द्वारा अवरोध खड़ा करने पर हिन्दी को राजभाषा के सिंहासन तक ले जाने में अभी कई बांधायें उपस्थित होंगी। और हैरानी की बात तो यह है कि अंग्रेजी जो कि गुलामी की भाषा है, उसे बनाये रहने देना चाहते हैं। दृढ़ इच्छाशक्ति होनी चाहिए जो कि वर्तमान प्रधान मन्त्री श्री मोदी में है। वे देश–विदेश में सर्वत्र हिन्दी भाषा हिन्दी में भाषण देते हैं। वस्तुतः मोदी ने ही हिन्दी को अन्तरराष्ट्रीय पहचान दिलाई है। कोई कारण नहीं कि जनता के समर्थन से वे भाषा के राष्ट्रीय समस्या को भी कश्मीर की समस्या की तरह निवारण कर सकेंगे। महाकवि रामधारी सिंह दिनकर ने अपने चर्चित ग्रंथ संस्कृति के चार अध्याय के उपसंहार में लिखते हैं कि ''अंग्रेजी यदि भारत की शिक्षा और शासन का माध्यम बनी रही तो इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत, भारत नहीं होकर इंग्लैण्ड और अमेरिका का सांस्कृतिक उपनिवेशा बना रहेगा। भारत, भारत बने, इसकी पहली शर्त यह है कि वह स्कूल, कालेजों और शासन के दफ्तरों में से अंग्रेजी को एक बारगी विदा कर दें। ज्ञान की भाषा के रूप में अंग्रेजी इस देश में हमेशा रखी जा सकती है। यदि अंग्रेजी इस देश की राजभाषा बनी रही तो भारत अपने मूल से छिन्न–भिन्न होकर नकली इंग्लिस्तान बन जाएगा।

अपने प्रचलित सत्य से दूर चला जाएगा। भारत तुरन्त अंग्रेजी को छोड़कर अपनी भाषाओं में आ जाएगा। सत्य हमेशा एक रहता है, व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र का भला सत्य को स्वीकार करने में है। इस ग्रन्थ की प्रस्तावना स्वयं नेहरू ने लिखी थी, पर लगता है कि उपसंहार वाला अध्याय बाद में जोड़ा गया। सत्य वही है इंग्लैण्ड का उदाहरण हमारे सामने है। दृष्टव्य है कि मात्र 38 दिन के भीतर फ्रेंच व लैटिन को विदाकर अंग्रेजी को लाया गया था।

पं. प्रकाशवीर जी शास्त्री एक सांसद के रूप में सरकारी दौरे पर विदेश गए। वहाँ शास्त्री जी से एक पत्रकार ने पूछा –
आपके देश की राष्ट्र भाषा क्या हैं?
अगर हिन्दी तो सरकार क्यों नहीं अपनाती?
और अंग्रेजी तो जनता क्यों नहीं जानती?
यह प्रश्न आज भी अनुत्तरित हैं।
पता नहीं कौन सरकार कब उत्तर देगी?

पता नहीं कौनसी राजनीति ने हिन्दी और प्रान्तीय भाषाओं को आमने सामने खड़ा कर दिया जबकि हिन्दी जोड़ती हैं तोड़ती नहीं। जरूरत हैं हिन्दी पर राजनीति न हो।

सरकार हिन्दी व सभी प्रान्तीय भाषाओं को विकसित करे और आम आदमी की भाषा में राजकाज हो।

यदि हम हमारी उच्च शिक्षा मेडिकल, अभियांत्रिकी, शोध,प्रबन्धन या कोई अन्य को हिंदी में पढ़ाए तो कैसे प्रान्तीय भाषा का विरोध और प्रान्तीय भाषाएँ जब अंग्रेजी को स्वीकार सकते तो हिंदी तो आपकी बहन हैं।

उत्तर दे – यदि हिन्दी हैं तो सरकार क्यों नहीं अपनाती ?
– और अंग्रेजी हैं तो जनता क्यों नहीं जानती?

जब गाड़ी में बैठे "प्रकाश"
तो आगरा और इटारसी क्या है?
मरकट के तन सुंदर भूषण
ऊँट को पान बनारसी क्या है?
राष्ट्र की भाषा सुबोधिनि हिंदी
के आगे अंग्रेजी फारसी क्या है?
गर न हो विश्वास तो देखो
हाथ कँगन को आरसी क्या है?

— ✍ डा. श्रीगोपाल बाहेती

हैदराबाद सत्याग्रह के बलिदान का इतिहास

आज से 70 वर्ष पूर्व 17 सितंबर 1948 हैदराबाद राज्य (वर्तमान का हैदराबाद शहर और कर्नाटक राज्य) का विलय भारतीय संघ मे हुआ था। तत्कालीन हैदराबाद राज्य में बहुमत जनता हिन्दू थी पर राज्य मुसलमान था। निजाम अपनी रियासत को पाकिस्तान मे मिलाने चाहता था और 1930 से ही हिन्दूओ को इस्लाम कबुलने के लिए तरह तरह दबाव बनाया करता था।

हैदराबाद शहर मे प्रथम आर्य समाज की स्थापना 1892 मे स्थापना हुई। 1938 तक तत्कालीन हैदराबाद राज्य मे 250 से ज्यादा आर्य समाज के केंद्र खुल गए थे। इसी के साथ आर्य समाज ने बहुसंख्यक हिन्दूओं हित मे आर्य समाज मे अपनी आवाज बुलंद करनी शुरू कर दी थी। जिन्हें दबाव से मुसलमान बनाया गया था उनके लिए शुद्धि आन्दोलन चलाया गया।

'घर वापसी मे प्रख्यात विद्वान पण्डित रामचन्द्र देहलवी जी के भाषणो का महत्वपूर्ण योगदान रहता था।

आर्य समाज को हैदराबाद को इस्लामिक राज्य बनाने मे सबसे बडा रोडा मानते हुए, निजाम ने संगठन पर कडे प्रतिबन्ध लगाने के आदेश दिए। इसमे सम्मेलन करने, किसी नई जगह पर हवन करने पर भी प्रतिबंध था। यहां तक ओ३म् का भगवा झंडा लहराने पर भी जेल भेज दिया जाता था।

9 अक्टूबर 1938 को आर्य समाज ने महात्मा नारायण स्वामी के नेतृत्व मे निजाम के विरूद्ध पहला सत्याग्रह किया। इसके बाद करीब 6 और सत्याग्रह हुए। 12000 सत्याग्रहियो मे से 7000 हैदराबाद राज्य के बाहर से थे। इसमे बडी संख्या गुरुकुल कांगडी हरिद्वार के ब्रह्मचारीयो की थी। सैकड़ों कार्यकर्ताओं जेल में डाला गया जिसमे से कुछ ने अनशन के दौरान अपने प्राण त्याग दिए।

आज देश का दुर्भाग्य है कि जीन लोगों ने कभी इतिहास पढा नही वह इतिहास बदलने की बात करते हैं.....संसार के सम्मानित राष्ट्रों का इतिहास उन व्यक्तियों के चरित्रों से सदा भरपूर रहा है, जिन्होंने उच्च एवं पवित्र उद्देष्यों की पूर्ति के लिए महान् से महान् त्याग किया और समय पड़ने पर इस संघर्ष में अपने जीवन को न्योछावर कर दिया और पीछे बलिदानों के अवषेश रख गए, जो अनुगामियों का पथ प्रदर्शन कर सकते हैं।

शहीदों को मृत्यु कभी स्पर्श नहीं करती अपितु वे स्वयं मर कर अमर हो जाते हैं। इतिहास साक्षी है। ऐसी महान् आत्माओं का रक्त कदापि व्यर्थ नहीं गया अपितु समय आने पर एक ऐसे प्रखर प्रचंड रूप में प्रवाहित हो निकला जिसमें हिंसा, अत्याचार और पाशविकता के दल स्वतः निमग्न हो गए। ये व्यक्ति धर्म–प्रचार, सदुपदेश, प्रजावाद की प्रस्थापना, शांति और प्रेम एवं सत्य को साधारण व्यक्तियों तक पहुंचाने के लिये अपने जीवन–लक्ष्य की कठिनाईयों को पार कर आगे बढ़ते ही रहे। इन्होंने सदा पराक्रान्तों का साथ दिया और मानवता के उच्च आदर्शो के रक्षक हुए और इन हेतुओं से निज तन–मन–धन की बलि देकर स्पष्ट कर दिया कि इनका सेवा कार्य में कितना उत्साह था तथा बलिवेदी से कितना ऊंचा प्रेम था।

आर्य समाज के शहीद मरने के बाद अमर हो गये और इन हुतात्माओं के रक्त से हैदराबाद में वैदिक धर्म का जो चमन सींचा गया, वह अब एक विस्तृत उद्यान बन गया है और रियासत में वैदिक धर्म का नव सन्देश दे रहा है। यहां हम कुछ आर्य समाजी शहीदों का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं जो वर्तमान में संसार में उपस्थित तो नहीं हैं पर वे सबके हृदयों में स्मरण रहेंगे और ऐसा प्रतीत होता है कि हम इन्हें कभी भूल नहीं सकेंगे।

1. वेद प्रकाश जी

वेद प्रकाश जी का पूर्व नाम दासप्पा था। दासप्पा संवत् 1827 में गुजोटी में पैदा हुए। इनकी माता का नाम रेवती बाई और पिताश्री का नाम रामप्पा था। गरीब माता–पिता को इसकी क्या सूचना थी कि उनका बेटा बड़ा होकर हुतात्मा बनेगा और वैदिक धर्म के मार्ग में शहीद होकर अमर हो जाएगा। दासप्पा ने मराठी माध्यम से आठवीं श्रेणी तक षिक्षा ग्रहण की।

जैसे–जैसे ये बढ़ते गये वैसे–वैसे वे धर्म की ओर आकर्षित होते गये। वे आर्य समाज के सत्संगों में बराबर सम्मिलित होते थे। वैदिक धर्म के आकर्षण ने इन्हें महर्शि दयानन्द का पक्का भक्त बना दिया। आर्य समाजी बनने के बाद यह वेद प्रकाश कहलाने लगे थे। इनका आर्य समाज में असाधारण प्रेम एवं निश्ठा के ही कारण गुंजोटी में आर्य समाज की नींव डाली गयी पर स्थानीय ईर्ष्यालू यवन इन्हें देखकर जलने लगे थे। वेद प्रकाश जी सुगठित शरीर एवं सद्गुण रखते थे और लाठी–तलवार चलाने की विद्या में पर्याप्त दक्ष थे। इनकी यह दक्षता कई भयंकर संकटों के समय इनकी सहायक सिद्व हुई। कई बार विरोधी दल ने इन पर आक्रमण किये और ये अपने आपको सुरक्षित रखने में सफल हुए।

गुंजोटी का छोटे खां नाम का एक पठान स्त्रियों को गलत निगाहों से देखता था। एक दिन वेद प्रकाश जी ने इसे ऐसा करने से रोका और सावधान किया कि भविष्य में इस प्रकार कुद्रष्टि मातसमाज पर न डालें। ह बात गुण्डों को ह्रदयग्राही न थी और सब इनके शत्रु हो गए। वेद प्रकाश जी ने गुंजोटी में हिन्दुओं के लिये पान की एक दुकान खोल दी और चांद खान पान का एक व्यापारीद्ध इनका शत्रु हो गया और भीतर ही भीतर इनके विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगा। एक दिन यवनों ने स्थानीय आर्य समाज के मन्त्री के मकान पर अकस्मात् धावा बोल दिया, इसकी सूचना वेद प्रकाश जी को मिली, वे इन आक्रमणकारियों को रोकने के लिए निःशस्त्र ही चले गये। मन्त्री के मकान के समीप दो–तीन मुसलमानों ने इन्हें पकड़ लिया और आठ–नौ व्यक्तियों ने इन्हें नीचे गिरा कर हत्या कर दी। विषेश उल्लेखनीय बात यह है कि उस दिन पुलिस ने वहां के प्रतिष्ठित हिन्दुओं को थाने में बुलाकर बैठा रखा था। आक्रमकर्त्ताओं और हत्यारों को पहचान लिया गया और न्यायालय में गवाह भी उपस्थित किये, पर फिर भी हत्यारों को निर्दोश घोषित कर दिया गया। वेद प्रकाश जी का रक्त हैदराबाद में पहला रक्त था जो बड़ी निर्दयता के साथ बहाया गया था और इसके बाद वीर आर्यों के बलिदानों का एक सिलसिला सा चल पड़ा।

2. धर्म प्रकाश जी

धर्म प्रकाश जी का पूर्व नाम नागप्पा था। नागप्पा जी का जन्म कल्याणी में संवत् 1839 में हुआ था। इनके पिताश्री का नाम सायन्ना था। इनका पदार्पण जब आर्य समाज में हुआ तब से ये धर्म प्रकाश कहलाने लगे। कल्याणी एक मुस्लिम नवाब की जागीर थी। वहां मुसलमानों का अत्याचार नंग–नाच कर रहा था। मुसलमानो के अत्याचारों को देखकर धर्म प्रकाश इसकी रोक–थाम की तैयारी में लग गये। हिन्दुओं को शस्त्र विद्या सिखाने लगे। कल्याणी के मुसलमान हिन्दुओं के शारीरिक अभ्यास से रुस्ठ हो गये और उन्होंने इनकी हत्या करने की कमर कस ली। कल्याणी के इस धर्मवीर पर कई बार आक्रमण किये गये पर आक्रमकारियों को सफलता नहीं मिली। कल्याणी के खाकसार इनकी हत्या की ताक में रहने लगे। 27 जून 1837 ई. की रात को धर्म प्रकाश आर्य समाज कल्याणी के सत्संग से अपने घर वापस जा रहे थे कि खाकसारों ने इन्हें एक गली में घेर कर बरछों और भालों की सहायता से मार डाला। वेद प्रकाश की हत्या से आर्य समाज में शोक व दुःख की लहर दौड़ गयी। इस हत्याकाण्ड के हत्यारे भी न्यायालय से निर्दोष छोड़ दिये गये।

3. *महादेव जी*

महादेव जी अकोलगा के रहने वाले थे। साकोल आर्य समाज के सत्संगों में जब इन्हें कई बार सम्मिलित होने का अवसर मिला, तब वैदिक धर्म का जादू इन पर चढ़ गया। इनके मन और मस्तिक्ष पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि आर्य समाजी बन जाने के बाद वैदिक धर्म के प्रचार की धुन लग गयी। तरुणोत्साह और साहस इन्हें इस मार्ग पर आगे बढ़ाता ही रहा। महादेव जी की मुखाकष्ति पर तेज था। भाषण देते समय इनके मुख से जो वाक्य निकलते, उन्हें लोग बड़ी तन्मयता और रुचि से सुनते और एक तरुण आर्य युवक को प्रचार के काम में इस प्रकार तल्लीन देखकर लोगों को भी इच्छा होती थी कि वे भी इसी प्रकार बनें। महादेव जी के प्रचार का काम जब प्रगति पर था उस समय मुसलमान इनके अकारण षत्रु बन गये। कई बार इन पर इस द्रष्टि से आक्रमण हुए कि वे सदा के लिए मौन हो जाए पर वे बचते ही रहे।

4. *श्याम लाल जी*

धर्मवीर श्याम लाल जी का जन्म 1903 ई. भालकी में

हुआ था। इनके पिताश्री का नाम भोला प्रसाद और माता का छोटूबाई था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा मराठी में हुई। ये एक पौराणिक परिवार से थे। इनके एक मामा आर्य समाजी थे, जिनके प्रभाव से श्याम लाल जी के ज्येश्ठ भ्राता बंसीलाल जी वैदिक धर्म के अनुयायी और स्वामी दयानन्द के अन्तःकरण के भक्त बन गये और आर्य समाज के सर्वप्रिय नेता भी कहलाने लगे। गुलबर्गा में आपके ही प्रयासों से आर्य समाज की स्थापना हुई। वे स्वयं इस समाज के मन्त्री बनकर कार्य संचालन करते रहे। 1925 ई. में वकील बने और उदगीर में वकालत करने लगे। निजी जीविकोपयोगी कार्य करते हुए आर्य समाज का प्रचार भी करते थे। 1926 ई. में इन्हें चर्म रोग लग गया और वह इतना बढ़ा कि पूरा शरीर फूल गया। रोग निवारणार्थ आप लाहौर गये। अभी आप लाहौर में ही थे कि 1926 ई. में स्वामी श्रद्धानन्द जी शहीद हो गये। स्वामी जी के इस बलिदान का प्रभाव इन पर अत्यधिक पड़ा। लाहौर से वापस आकर उदगीर में आर्य समाज की स्थापना की और प्रतिज्ञा की कि आजीवन वैदिक धर्म का प्रचार करेंगे। उदगीर के तात्कालीन मुसलमान तहसीलदार ने स्थानीय मुसलमानों को प्रेरित कर इनके मकान पर आक्रमण करवा दिया, परन्तु यह आक्रमण विफल रहा। आर्य समाज उदगीर की स्थापना के बाद आपके अथक प्रयासों से विजय दशमी के अवसर पर प्रथम बार जुलूस निकाला गया। होली के जुलूस के अवसर पर आप पर पुनः आक्रमण हुआ पर इस बार भी आप बच गये। श्याम लाल जी ने अछूतों के लिए एक पाठशाला, एक व्यायाम शाला तथा एक निःशुल्क चिकित्सालय भी स्थापित किया। 1928 ई. में उदगीर आर्य समाज का वार्षिकोत्सव हुआ और इसी के बाद पुलिस आपका पीछा करने लगी। इसी वर्ष धारा 104 के अधीन आप पर झूठा मुकद्दमा चलाया गया और आपसे दो हजार की जमानत और मुचलका लिया गया। श्याम लाल जी उदगीर से बाहर निकलकर भालकी, कल्याणी, औराद, शाहजहानी, लातूर तथा औसा आदि स्थानों पर प्रचार करने लगे। कई बार मुसलमानों ने आप पर आक्रमण किया और कई ऐसे अवसर आये जब कि हिन्दुओं ने आपको अपने पास आश्रय देना अस्वीकार किया। आपने कई रातें मार्ग पर चलते हुए बितायीं और दिन में फिर प्रचार कार्य किया। 1935 ई. में माणिक नगर की यात्रा के अवसर पर मुसलमानों ने आप पर छुरा घोंप देने का प्रयत्न किया पर एक नवयुवक बीच में आया, स्वयं जख्मी हुआ और इन्हें बचा लिया। 1938 ई. में इन पर पुलिस ने एक झूठा मुकद्दमा चलाया और न्यायालय ने इन्हें दीर्घकालिक दण्ड दिया। अभी आप कारावास में दण्ड भोग रहे थे कि आपका देहांत हो गया। पं. श्याम लाल जी का नाम हैदराबाद आर्य समाज के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा रहेगा क्योंकि ये अपने अथक प्रयत्नों, संघर्ष और श्रद्धा से आर्य समाज को शक्तिषाली और विस्तृत करने की चिन्ता अन्तिम श्वास तक करते रहे।

5. *व्यंकटराव जी*

व्यंकटराव जी कंधार जिला नांदेड़ के रहने वाले थे। इन्होंने स्टेट कांग्रेस द्वारा संचालित सत्याग्रह में भाग लिया और दण्ड भोगते रहे। कारावास के अधिकारियों द्वारा मार–पीट के कारण 18 अप्रैल 1938 ई. में आप परलोक सिधार गये।

6. *विष्णु भगवान् जी*

विष्णु भगवान् जी ताण्डूर यगुलबर्गाद्ध के रहने वाले थे। इन्होंने गुलबर्गा में ही सत्याग्रह किया और वहीं इन्हें कारावास का दण्ड दिया गया। आपको गुलबर्गा से औरंगाबाद और फिर हैदराबाद जेल में रखा गया और यहां दूसरे सत्याग्रहियों के साथ इन्हें इतना पीटा गया कि ये सहन न कर सके और 2 मई 1939 ई. में आपने 30 वर्ष की आयु में अपना शरीरान्त किया।

7. *माधवराव सदाशिवराव जी*

आप लातूर के रहने वाले थे। आपने 30 वर्ष की आयु में आर्य सत्याग्रह में भाग लिया और गुलबर्गा जेल में बन्द कर दिये गए। 26 मई 1939 ई. के दिन कड़कती धूप में नंगे पैर जेल में कठिन परिश्रम करने से रोगग्रस्त हो गए। चिकित्सा का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया और आप इस प्रकार निजाम सरकार की क्रूरता के कारण देहावसान कर गये। माधव राव सदाशिवराव के देहान्त की सूचना पाकर असंख्य नर–नारी इनके अन्तिम दर्शन करने गए पर पुलिस ने रोक दिया और जेल में ही इनका शव अग्नि की भेंट कर दिया गया।

8. *पाण्डुरंग जी*

उस्मानाबाद के रहने वाले युवा आर्य सत्याग्रही को सत्याग्रह के कारण ही कारावास का दंड दिया गया था। गुलबर्गा जेल में इन पर इन्फुएंजा का आक्रमण हुआ पर चिकित्सा का कोई प्रबन्ध न किया गया। हालत चिन्ताजनक होती गई। 25 मई 1939 के दिन इन्हें नागरिक औषधालय में भेजा गया और वहीं 27 मई को इनका देहान्त हो गया। असंख्य नर–नारी इनके अन्तिम दर्शन को आए पर पुलिस ने इन्हें वापस जाने पर विवश कर दिया और पुलिस द्वारा ही इनका अन्तिम संस्कार किया गया।

9. *राधाकृष्ण जी*

राधाकृष्ण जी निजामाबाद के एक राजस्थानी थे। 1903 ई. में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम जीतमल था। 1934 ई. में आप आर्य समाजी बने और तभी से इसके प्रचार की धुन लग गई। इन्होंने ही निजामाबाद में आर्य समाज की स्थापना की थी। इसी कारण आप पुलिस की वक्रद्रष्टि में खटने लगे। मुहर्रम के दिनों में आप पर मुकद्दमा चलाया गया और इनसे एक साल के लिए दो हजार रुपये का मुचलका लेकर छोड़ा गया। आर्य सत्याग्रह के समय आप बड़े उत्साह के साथ चन्दा एकत्रित करने में जुटे थे। 2 सितम्बर 1931 ई. के दिन एक अरबी ने छुरा घोंप कर मार डाला और यह बात सर्व विदित हो गई कि इनकी हत्या के षड्यंत्र में पुलिस का हाथ था।

10. *लक्ष्मण राव जी*

आपने धार्मिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए सत्याग्रह किया। जेल के कठोर व्यवहार को सहन न कर सकने के कारण 3 अगस्त 1939 ई. को हैदराबाद जेल में आपका देहान्त हो गया।

11. *शिवचन्द्र जी*

आपका जन्म 3 मार्च 1916 ई. में दुबलगुण्डी में हुआ था। आपके पिताश्री का नाम अन्नपक्षप्पा था। 1935 ई. में मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थी। सरकार की ओर से आपको छात्रवष्ति भी प्राप्त हुई थी। आप हुमनाबाद की एक पाठशाला में अध्यापक हो गये थे। पाठशाला के अवकाष के समय आप आर्य समाज के साहित्य का अध्ययन किया करते थे। आर्य समाज के लिए आपने बड़े उत्साह और श्रद्धा से काम किया। शोलापुर से आप सत्याग्रहियों को हैदराबाद लाते थे और सत्याग्रह के समाचार हैदराबाद से बाहर भेजते थे। 3 मार्च 1942 ई. के दिन होली में जुलूस के मुसलमानों ने आक्रमण कर दिया, फलस्वरूप आप शहीद हो गए। आप के साथ आपके साथी लक्ष्मण राव जी, राम जी अगडे और नरसिंह राव जी गोलियों का निशाना बने थे।

12. राम कृष्ण जी

राम कृष्ण जी का जन्म लावसी ग्राम में एक ब्राह्मण कुल में हुआ था और यह शहीद होने से केवल दो सप्ताह पूर्व ही आर्य समाजी बने थे। एक दिन पठानों ने घोषणा की थी कि 'उस दिन वे मन्दिर को तोड़ेंगे, जिसे धर्म पर विश्वास हो वे आकर उन मन्दिरों को उनके हाथों से बचा लें।' सब हिन्दू घबरा कर अपने–अपने मकानों में बैठ गये किन्तु जब राम ने यह घोषणा सुनी तो वे क्रोधाग्नि से जल उठे। पुजारियों ने कभी इन्हें मन्दिर में प्रवेश होने नहीं दिया था और फिर आर्य समाजी होने के कारण इन्हें मन्दिर और इन मन्दिरों की मूर्तियों से क्या रुचि, परन्तु पठानों की इस घोषणा को इन्होंने सम्पूर्ण हिन्दू जाति के लिए एक चौलेंज समझा और जाति की मान रक्षा हेतु मन्दिर द्वार पर अपना डेरा डाला। यहाँ इन पर गोलियों की वर्षा हुई, घायल होने पर भी आपने पठानों को मार भगाया और हिन्दू जाति की लाज रख ली। स्वयं शहीद होकर इन्होंने मन्दिर की रक्षा की और जिस जाति में वे पैदा हुए थे, उसकी प्रतिष्ठा रख ली।

13. भीम राव जी

आप हिपला उदगीरद्ध के रहने वाले थे। इनके मित्र माणिक राव की बहन को मुसलमानों ने मुसलमान बना लिया था। भीमराव ने उसे शुद्ध कर लिया था। इस कारण मुसलमानों ने क्रोधित होकर इनके घर को आग लगा दी और इन्हें मार कर इनके हाथ–पांव काट डाले और इन्हें आग में जला दिया।

14. माणिक राव जी

यह भी हिपला उदगीरद्ध के रहने वाले थे। इनकी बहन को मुसलमान बना लिया गया था। जब इनकी बहन को शुद्ध कर लिया गया तो मुसलमानों ने

माणिक राव जी को गोलियों का निशाना बना दिया था।

15. सत्य नारायण जी

आप अम्बोलगा यवीदरद्ध के रहने वाले थे। आर्य समाज का काम बड़े जोष के साथ करते थे, इसीलिए मुसलमान इनके शत्रु हो गए। मुहर्रम के दिनों में वे बाजार से जा रहे थे कि एक मुसलमान ने पीछे से तलवार से हमला कर दिया। वे तुरन्त ही चिकित्सालय पहुंचाए गये पर वहां जाते ही परलोक सिधार गये।

16. महादेव जी

यह तिवाड़े के रहने वाले थे। गुलबर्गा में ही सत्याग्रह करने के कारण जेल में डाल दिए गये थे। जेल वालों के अत्याचार से 1939 ई. में ही चल बसे।

17. अर्जुन सिंह जी

आप आर्य समाज के एक नर–रत्न थे। आप तालुका कन्नड़ औरंगाबाद में पैदा हुए थे। बचपन से ही आप हैदराबाद में रहने लगे थे। अपने उत्साह और निष्ठां के कारण आप हैदराबाद दयानन्द मुक्ति दल के सेनापति बनाए गए थे। सम्वत् 1861 में जंगली विठ्ठोबा की यात्रा में कुषल प्रबन्ध करने के बाद घर वापस लौट रहे थे कि मार्ग में कुछ सशस्त्र मुसलमानों ने आप पर आक्रमण कर दिया, तुरन्त ही उस्मानिया दवाखाना भेजे गए पर दूसरे ही दिन परलोक सिधार गये।

18. गोविन्द राव जी

आप निलंगा जिला बीदर के रहने वाले थे। सत्याग्रह करके जेल गये। पर वहां के अत्याचारों को सहन न कर सकने के कारण देहावसान कर गये।

19. गोन्दिराव जी, लक्ष्मण राव जी इन दोनों ने सत्याग्रह में अपनी जान की बाजी लगा दी। आर्य समाजी शहीदों का यह बहुत ही संक्षिप्त परिचय है। जिसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि हैदराबाद में वे निजाम सरकार और मुसलमानों के अत्याचारों का किस प्रकार निशाना बने और वैदिक पताका को ऊँचा रखने के लिए किस प्रकार इन्होंने अपना अन्तिम रक्त बिन्दु तक बहा दिया।

– फेसबुक से साभार

हिन्दी जननी हिंद की

हिंदी जननी हिंद की, गाथा हिंद महान्
एक छोर तुलसी खड़े, दूजे पर रसखान ।।

चटक - मटक जाने नहीं, हिंदी सादा रूप
मीठी - मीठी यों लगे, ज्यों सर्दी की धूप ।।

हिंदी भाषा प्रेम की, माँ का लाड़ दुलार ।
भला-बुरा जितना कहो, भर - भर बाँटे प्यार ।।

महादेवि दिनकर कहीं, तुलसी सूर प्रसाद ।
हिंदी छंदों की लड़ी, छंद मुक्त आजाद ।।

हिंदी को 'हिन्डी' कहें, कितनी पूत महान् ।
सूट - साट सा डाट कर, काग हुए विद्वान् ।।

हिंदी के झण्डे तले, एक हुए सब वीर ।
सबने मिलजुल कर सही, आजादी की पीर ।।

हिंदी रतिमय सुंदरी, हिंदी रूप मनोज ।
हिंदी के हर शब्द में, प्रेम - प्रीत सद् ओज ।।

हिंदी पथ ईमान का, दया धर्म का नूर ।
चलो चलें सद् मार्ग पर, राम कहाँ फिर दूर ।।

असम हिमाचल केरला, या दिल्ली पंजाब ।
हिन्दी से खुशहाल सब, सबको दाना आब ।।

कहाँ मिला किसको मिला, हिंदी बिन आधार ?
बिन हिंदी ज्यों रेत पर, नींव धरे संसार ।।

– ✍ भारत भूषण आर्य

प्रगति राष्ट्रभाषा

अंग्रेजी में तो नाम को शार्ट करने का चलन बहुत है। राज कपूर आरके बन जाते हैं, जगदीश कुमार जेके, कोई केके है तो शाहरुख खान एसआरके कहलाते हैं। काका हाथरसी ने कल्पना की कि यही चलन यदि राष्ट्रभाषा हिन्दी में लोकप्रिय हो जाये तो क्या होगा:

प्रगति राष्ट्रभाषा करे, यह विचार है नेक
लेकिन आई सामने, विकट समस्या एक
विकट समस्या एक, काम हिंदी में करते
किंतु शार्ट में हस्ताक्षर, करने से डरते
बोले 'काशी नाथ' जरा हमको बतलाना
दोनो आँखे होते हुए, लिखूँ मैं 'काना'?

इसी तरह से और भी, कर सकते हैं तर्क
प्रोफेसर या प्रिंसिपल, अफसर बाबू क्लर्क
अफसर बाबू क्लर्क, होय गड़बड़ घोटाला
डाक्टर 'नाथू लाल' करें हस्ताक्षर 'नाला'
कह 'काका' बतलाओ क्या संभव है ऐसा
लाला 'भैंरो साह' लिखें अपने को 'भैंसा'

परिवर्तन घनघोर हो, बदल जाएँगी कौम
'डौंगर मल' संक्षिप्त में, लिखे जाएँगे 'डौंम'
लिखे जाएँगें डौंम, नाम असली खो जाएँ
'गुप्पो मल' को शार्ट करो तो 'गुम' हो जाएँ
उजले 'कांती लाल' किंतु कहलाएँ 'काला'
भैय्या 'भाई लाल' पुकारे जाएँ 'भाला'

अच्छे अच्छे नाम भी हो जाएँ बदनाम
जब की 'हरिहर राम' को लिखना पड़े 'हराम'
लिखना पड़े हराम, किसी का क्या कर लेंगे
चिढ़ाचिढ़ा कर 'गज धारी' को 'गधा' कहेंगे
कह 'काका' कवि 'बाबू लाल' बनेंगे 'बाला'
पंडित 'प्यारे लाल', लिखे जाएँगे 'प्याला

हिंदू 'ईश्वर दत्त' हैं, वे लिक्खेंगे 'ईद'
लाला 'लीला दत्त' जी, बन जाएँगे 'लीद'
बन जाएँगे लीद, मजे तो तबआएंगे
'तेजपाल लीडर' जब 'तेली' कहलाएँगे
कह काका कवि 'होली लाल' बनेंगे 'होला'
बाबू 'छोटे लाल' लिखे जाएँगे 'छोला'

जान बूझकर व्यर्थ ही, क्यों होते बदनाम
उतना दुखदायी बने, जितना लंबा नाम
जितना लंबा नाम, रखो छोटे से छोटा
दो अक्षर से अधिक नाम होता है खोटा
सूक्ष्म नाम पर कभी नहीं पड़ सकता डाका
'काका' को उलटो पलटो फिर भी है 'काका'

— ✍ काका हाथरसी

हिन्दी हैं हम

– ✍ अखिलेश आर्येन्दु

हिन्द और हिन्दी के लिए समर्पित देशभक्तों को हैरानी होती है कि आजादी के चौहत्तर साल बीत जाने के बाद भी भारत की अपनी कोई राष्ट्र भाषा नहीं है। ऐसी भाषा जो भारत के हर व्यक्ति की चहेती हो और सर्वमान्य भाषा हो। आइए एक ऐसे अहिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र के विलक्षण महान् व्यक्तित्व के हिन्दी प्रेम की अमर कहानी सुनें और समझें कि कैसे एक हिन्दी विरोधी प्रान्त का व्यक्ति हिन्दी के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पित कर दिया। डॉ. राजन पैदा हुए दक्षिण में लेकिन जीवन का अधिकांश समय प्रयागराज में गुजारे। अनेक किताबें हिन्दी में लिखी और तमिल में भी, लेकिन अंग्रेजी उनके लिए हमेशा विदेशी भाषा ही बनी रही। वे सोचते है, क्या जीते जी हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा के रूप में प्रतिष्ठा हासिल कर लेगी? क्या भारत की अपनी कोई एक भाषा होगी जो सबको प्रिय होगी? उनका मानना है हिन्दी देवनागरी में लिखे जाने के कारण एक वैज्ञानिक, व्याकरणिक और व्यावहारिक भाषा है। इसलिए हिन्दी को देश का हर नागरिक सहजता से अपना सकता है और हिन्दी के जरिए सारे कार्य–व्यवहार सफलता के साथ पूरा कर सकता है। उनके परिवारी जनों को हैरानी होती है कि एक तमिलभाषी हिन्दी को इतनी अहमियत क्यों देता है। लेकिन उनका हिन्दी–प्रेम अद्‌भुत है। उनका मानना है हिन्दी हमारी अपनी है। हम हिन्दी के बिना अधूरे हैं। हिन्दी ऐसी प्रवाहमयी, ज्ञानमयी और प्रेरक भाषा है जिससे बोलने, समझने और सोचने की स्थिति का विकास होता है। गौरतलब है जिस भाषा में प्रवाहमयता, सहजता और वैज्ञानिकता हो, वह सबकी अपनी भाषा सहज रूप में बनने के काबिल है। इसलिए वे अहिन्दी क्षेत्र के रहते हुए भी हिन्दी को अपने जीवन प्रगति का वाहक भाषा के रूप में देखते हैं।

गांधी कहते हैं, "मैं अंग्रेजी से नफरत नहीं करता, लेकिन हिन्दी से अधिक प्रेम करता हूं। इस लिए मैं हिंदुस्तान के शिक्षितों से कहता हूं कि वे हिंदी को अपनी भाषा बना लें। हम हिंदी के जरिए ही प्रांतीय भाषाओं से परिचय प्राप्त कर सकते हैं। गांधी का यह वाक्य आज करोड़ों भारतीयों के लिए प्रेरक और राष्ट्र भाषा प्रेम की ओर सहज आकर्षित करता है। हिन्दी भारतीय संस्कृति, साहित्य, भाषा और स्वदेशी का जीवन्त प्रतीक है। हिन्दी वह विश्वास है जिस पर देशी–विदेशी किसी भी व्यक्ति ने संदेह या संशय की नज़र से कभी नहीं देखा। हिन्दी सभी देशी–विदेशी भाषाओं को अपने में समाहित करते चलती है। हिन्दी जितना भारतीयों को प्रिय रही है उससे कम नहीं विदेशियों को रही है। सैकड़ों भाषाविदों, चिन्तकों, विद्वानों और साहित्यकारों की अपनी भाषा रही है हिन्दी। इसलिए जब हम हिन्दी की बात करते हैं तो यह सर्व स्वीकार भाषा के रूप में हमारे सामने आती है। हम हिन्दी को उसके मौलिक रंग–ढंग और स्वरूप में अपनाकर स्वयं हिन्दी–धर्मी कहला सकते हैं।

ओ३म्

श्राद्ध का ठीक स्वरूप क्या है?

श्राद्ध क्या है? श्राद्ध का अर्थ है सत्य का धारण करना अथवा जिसको श्रद्धा से धारण किया जाए। श्रद्धापूर्वक मन में प्रतिष्ठा रखकर, विद्वान, अतिथि, माता-पिता, आचार्य आदि की सेवा करने का नाम श्राद्ध है। श्राद्ध जीवित माता-पिता, आचार्य, गुरु आदि पुरुषों का ही हो सकता है, मृतकों का नहीं ! मृतकों का श्राद्ध तो पौराणिकों की लीला है। वैदिक युग में तो मृतक श्राद्ध का नाम भी नहीं था।

वेद में तो बड़े स्पष्ट शब्दों में माता-पिता, गुरु और बड़ों की सेवा का आदेश दिया है, यथा-

अनुव्रतः पितुः पुत्रोः मात्रा भवन्तु संमनाः ।

अथर्ववेद ३/३०/२

पुत्र पिता के अनुकूल कर्म करने वाला और माता के साथ उत्तम मन से व्यवहार करने वाला हो।

21 सितम्बर

विश्व शान्ति दिवस

"विश्व शान्ति दिवस" की हार्दिक शुभकामनाएं, हम जब तक आपस में द्वेष, स्वार्थ, कटुता व एक दूसरे को नीचा दिखाना आदि की भावना को समाप्त नहीं करेंगे तब तक विश्व में शान्ति नहीं आ सकेगी, हाँ हर वर्ष विश्व शान्ति दिवस जरूर मना लो। "मैं सभी को मित्र की दृष्टि से देखूं, हम सब परस्पर सभी को मित्र की दृष्टि से देखें।"

आर्य परिवार संस्था, कोटा